Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पद्मावती

मोहनलाल शर्मा

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पद्मावती

शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार की विश्वविद्यालय-ग्रन्थ योजना के अन्तर्गत
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित

For Private and Personal Use Only

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पद्मावती

डॉ० मोहनलाल शर्मा

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पद्मावती

प्रकाशक
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
भोपाल

•

©मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

•

प्रथम संस्करण
१९७१

•

मूल्य
पुस्तकालय संस्करण : ८ रुपये ५० पैसे
साधारण संस्करण : ६ रुपये

•

मुद्रक
धारा प्रेस,
कटरा, इलाहाबाद-२

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्राक्कथन

इस बात पर सभी शिक्षा-शास्त्री एकमत हैं कि मातृभाषा के माध्यम से दी गयी शिक्षा छात्रों के सर्वांगीण विकास एवं मौलिक चिन्तन की अभिवृद्धि में अधिक सहायक होती है। इसी कारण स्वातंत्र्य आन्दोलन के समय एवं उसके पूर्व से ही स्वामी श्रद्धानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं महात्मा गांधी जैसे देशमान्य नेताओं ने मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने की दृष्टि से आदर्श शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित कीं। स्वतंत्रता-प्राप्ति से बाद भी देश में शिक्षा सम्बन्धी जो कमीशन या समितियाँ नियुक्त की गयीं, उन्होंने एक मत से इस सिद्धान्त का अनुमोदन किया।

इस दिशा में सबसे बड़ी बाधा थी—श्रेष्ठ पाठ्य-ग्रन्थों का अभाव। हम सब जानते हैं कि न केवल विज्ञान और तकनीकी, अपितु मानविकी के क्षेत्र में भी विश्व में इतनी तीव्रता से नये अनुसंधानों और चिन्तनों का आगमन हो रहा है कि यदि उसे ठीक ढंग से गृहीत न किया गया तो मातृभाषा से शिक्षा पाने वाले अंचलों के पिछड़ जाने की आशंका है। भारत सरकार के शिक्षा-मंत्रालय ने इस बात का अनुभव किया और भारत की क्षेत्रीय भाषाओं में विश्वविद्यालयीन स्तर पर उत्कृष्ट पाठ्य-ग्रन्थ तैयार करने के लिए समुचित आर्थिक दायित्व स्वीकार किया। केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय की यह योजना राज्य अकादमियों द्वारा कार्यान्वित की जा रही है। मध्यप्रदेश में हिन्दी ग्रन्थ अकादमी की स्थापना इसी उद्देश्य से की गयी है।

अकादमी विश्वविद्यालयीन स्तर की मौलिक पुस्तकों के निर्माण के साथ, विश्व की विभिन्न भाषाओं में बिखरे हुए ज्ञान को हिन्दी के माध्यम से प्राध्यापकों एवं विद्यार्थियों को उपलब्ध करेगी। इस योजना के साथ राज्य के सभी महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय सम्बद्ध हैं। मेरा विश्वास है कि सभी शिक्षा-शास्त्री एवं शिक्षा-प्रेमी इस योजना को प्रोत्साहित करेंगे। प्राध्यापकों से मेरा अनुरोध है कि वे अकादमी के ग्रन्थों को छात्रों तक पहुँचाने में हमें सहयोग प्रदान करें जिससे बिना और विलम्ब के विश्वविद्यालयों में सभी विषयों के शिक्षण का माध्यम हिन्दी बन सके।

जगदीश नारायण अवस्थी

शिक्षामंत्री

अध्यक्ष : मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

For Private and Personal Use Only

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रस्तावना

प्राचीन भारत में पद्मावती एक अत्यन्त प्रसिद्ध नगर रहा है। महाकवि भवभूति के अनुसार यह नगर निर्मल जल वाली नदियों, विशाल राजप्रासाद, देवमन्दिर, नगर-द्वार आदि से सुशोभित था। इसके एक ओर सिन्धु नदी बहती थी और दूसरी ओर पारा। नगर के एक ओर जलप्रपात था। 'मालती-माधव' में इस नगरी का भव्य वर्णन उपलब्ध है। भवभूति से पूर्व बाण के 'हर्षचरित' में भी पद्मावती का उल्लेख है—जिससे उसके प्रसिद्ध होने का संकेत मिलता है। 'सरस्वती कण्ठाभरण' में यद्यपि पद्मावती का उल्लेख नहीं है, किन्तु इसमें पारा नदी के किनारे एक विहार की चर्चा है और सिन्धु नदी, फणीपति-वन एवं उच्च गिरि का भी इसके निकट होना बतलाया गया है। खजुराहो से प्राप्त लगभग १००० ई० के शिलालेख में पद्मावती का जो वर्णन मिलता है, उससे स्पष्ट है कि इस समय यह नगर सब प्रकार से उन्नत एवं समृद्ध रहा होगा। पुराणों में भी पद्मावती का उल्लेख आया है। इससे अनुमान होता है कि समृद्धि एवं प्राचीनता दोनों दृष्टियों से पद्मावती की गणना महत्वपूर्ण प्राचीन ऐतिहासिक नगरों में की जा सकती है।

डॉ० मिराशी के अनुसार यह स्थान विदर्भ के भण्डारा जिला में है, किन्तु अनेक आधुनिक विद्वानों के मत से यह स्थान मध्य-रेलवे के डबरा स्टेशन से लगभग १३ मील की दूरी पर पुराने ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत स्थित है। आजकल इसे पवाया कहते हैं। उत्खनन से भी इस स्थान पर महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई है, जिससे लगभग अब यह मान लिया गया है कि पवाया ही प्राचीन पद्मावती है। इस स्थान से प्राप्त हुई सामग्री ग्वालियर संग्रहालय में भी संगृहीत है।

मध्यप्रदेशीय प्राचीन नगर-माला के अन्तर्गत 'पद्मावती' का प्रकाशन इस अकादमी द्वारा किया जा रहा है। अन्य बातों के समान प्राचीन ऐतिहासिक अवशेषों की दृष्टि से भी मध्यप्रदेश अत्यन्त भाग्यशाली राज्य है। इसमें पद्मावती का स्थान इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इसके साथ नवनागों से लेकर अनेक राजवंशों का इतिहास गुंथा हुआ है। पद्मावती के नवनाग, जिनका उल्लेख विष्णु-पुराण तक में मिलता है, सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रोफ़ेसर मोहनलाल शर्मा की इस छोटी-सी किन्तु महत्वपूर्ण कृति में पद्मावती के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं पुरातात्विक आदि सभी पक्षों पर गम्भीरता के साथ प्रकाश डाला गया है। लेखक ने समस्त उपलब्ध सामग्री से लाभ उठाया है और अपनी बात को संयत, गम्भीर एवं सरल भाषा में व्यक्त किया है।

प्राचीन इतिहास में रुचि रखने वाले प्रबुद्ध पाठकों एवं विश्वविद्यालयों के उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों एवं शोध-रत छात्रों को यह कृति तृप्ति प्रदान करेगी।

प्रभुदयालु अग्निहोत्री

संचालक
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
भोपाल

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भूमिका

हिन्दी ग्रन्थ अकादमी ने एक ऐसे विषय पर लिखने का कार्य सौंपा था, जिसके विषय में लोगों की जानकारी अत्यल्प तो है ही, विद्वानों को भी इसके विषय में बहुत कुछ जानना शेष है। पद्मावती प्राचीन भारत का एक वैभवशाली नगर था। इसकी ख्याति भारत के कोने-कोने तक जा चुकी थी। राजनैतिक दृष्टि से पद्मावती किसी-न-किसी रूप में सर्व-प्रभुत्व-सम्पन्न जनतंत्रात्मक गणराज्य की आदिम परिभाषा के अन्तर्गत आ जाता है। कुषाण, नवनाग, गुप्त, प्रतिहार और परिहार एक-एक करके आये और चले गये। उसने यवन-सभ्यता के प्रभाव को देखा, मुस्लिम सभ्यता के प्रभाव को भी निरखा-परखा, किन्तु अपने प्राचीन वैभव को कभी भुलाया नहीं। भारशिव वंश की मान-मर्यादा की रक्षा की और आज भी अपने भग्नावशेषों में प्राचीन वैभव को सँजोये हुए, मध्यदेश और प्राचीन भारत के गौरव को साकार कर रही है। मध्यदेश का यह महान् सांस्कृतिक केन्द्र विद्या के क्षेत्र में कहीं आगे निकल चुका था।

विषय की उपादेयता

पद्मावती भारत की प्राचीन संस्कृति की संचित निधि है। आज भी यह भारत के प्राचीन गौरव का गुणगान कर रही है। अपने अन्तर में प्राचीन इतिहास के अनेक साक्ष्य सँजोये हुए है जो सम्पूर्ण देश के और विशेषकर मध्यदेश के प्राचीन वैभव की कहानी कह रहे हैं। इतिहासकारों ने भारत के जिस युग की अस्पष्ट और धूमिल कहानी कह कर अवहेलना कर दी, पद्मावती ने उसके विपरीत साक्ष्य प्रस्तुत किये और इस बात का संकेत दिया कि यह युग अवहेलनीय नहीं है। परवर्ती इतिहासकारों ने इस युग को भारतीय संस्कृति का निर्माण-काल कहा है जो बहुत-कुछ उचित प्रतीत होता है। इस युग में धर्म और संस्कृति के जिस स्वरूप की नींव पड़ गयी, आगामी बीस शताब्दियों में भी वह नींव का पत्थर हिल तो गया किन्तु उखड़ा नहीं। बीसवीं शताब्दी का भारत आज भी संस्कृति, राजनीति और धर्म में पद्मावती के उस प्राचीन आदर्श को अपना रहा है।

पद्मावती के उत्खनन-कार्य के द्वारा कुछ तथ्यों पर प्रकाश पड़ा है, किन्तु आशा इस बात की लगायी जा रही है कि प्राचीन संस्कृति का यह केन्द्र अभी और तथ्य और साक्ष्य उगलेगा, जिससे प्राचीन इतिहास का चित्र और भी निखर कर हमारे सामने आयेगा। इस दृष्टि से पद्मावती का महत्व और भी बढ़ जायेगा।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शोध का कार्य तो एक निरन्तर प्रक्रिया है। अतएव इस सम्बन्ध में पद्मावती पर यह अन्तिम पुस्तक नहीं है। अभी इस विषय में अन्य तथ्य उभरेंगे, नवीन साक्ष्य आयेंगे और पद्मावती के वास्तविक और विशाल स्वरूप की झाँकी मिलेगी। इस दृष्टि से अनुमान लगाया जा सकता है कि कभी यह कार्य एक रूपरेखा मात्र रह जायेगा, जब पद्मावती के सम्बन्ध में प्राचीन वैभव के भव्य भवन दिखायी देंगे। प्रारम्भिक अन्वेषण के रूप में फिर भी इसकी उपादेयता बनी रहेगी।

आभार प्रदर्शन

पद्मावती पर कुछ भी लिखने का कार्य समय-साध्य जरूर था। लेकिन डॉ० प्रभुदयालु अग्निहोत्री जी ने इस विषय में मुझे पूरी-पूरी सुविधा प्रदान की और साथ ही वे मेरे मनोबल को बढ़ाते रहे, इसके लिए मैं उनके प्रयत्नों की सराहना करते हुए अपना आभार व्यक्त करता हूँ। सागर विश्वविद्यालय में इतिहास विभाग के अध्यक्ष, प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी जी के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने अनेक सुझावों से मुझे लाभान्वित किया। हमीदिया कॉलेज, भोपाल के इतिहास-विभाग के अध्यक्ष, प्रो० वीरेन्द्र-कुमार सिंह ने इस पुस्तक को तैयार करने में जो सहयोग मुझे प्रदान किया है, वह वर्णनातीत है। आभार प्रदर्शित करके मैं उनके ऋण से उऋण नहीं हो सकता।

पुस्तक को तैयार करने में मैंने जिन विद्वान लेखकों के ग्रन्थों से सहायता ली है, उनके प्रति भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ। इन ग्रन्थों की सूची पुस्तक में दी हुई है। वैसे जहाँ तक बन पड़ा है मैंने यथास्थान सन्दर्भों का संकेत भी कर दिया है। कई स्थानों पर अन्य लेखकों के विचारों को मैंने अपने विश्वास और विश्लेषण के आधार पर अपना बना लिया है।

शिवपुरी के स्थानीय कलाकारों ने पुस्तक के लिए चित्रादि तैयार करने में जो कार्य किया है उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। अन्त में मैं वीरतत्त्व प्रकाशक मण्डल के पुस्तकालय के संरक्षक श्री काशीनाथ सराक जी का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने अपने सुसमृद्ध पुस्तकालय से पूरा-पूरा लाभ उठाने का मुझे अवसर प्रदान किया।

पद्मावती के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त करने में शिवपुरी के सूचना एवं प्रकाशन विभाग के अधिकारी श्री आनन्दसिंह जी से विशेष सहायता मिली। साथ ही श्री हरिहरनिवास द्विवेदी जी ने भी इस सम्बन्ध में मेरी सहायता की। मैं उन दोनों के प्रति आभार प्रदर्शित करता हूँ। मानचित्र तैयार करने के लिए श्री विट्ठल कुमार व्यास जी धन्यवाद के पात्र हैं।

—लेखक

—दस—

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय-सूची

प्राक्कथन

प्रस्तावना

भूमिका

अध्याय १

पद्मावती १

१.१ पद्मावती, १.२ स्थान-निर्धारण, १.३ पद्मावती का नामोल्लेख, १.४ पद्मावती तथा कान्तिपुरी सम्बन्धी विवाद का इतिहास, १.५ पद्मावती सम्बन्धी जनश्रुति, १.६ वतीः वाया, एक उल्लेख

अध्याय २

साहित्य और इतिहास ७

२.१ पुराण, २.२ बाणभट्ट का हर्षचरित, २.३ मालती-माधव में पद्मावती, २.४ सरस्वती-कंठाभरण में पद्मावती, २.५ खजुराहो का शिलालेख

अध्याय ३

पद्मावती की संस्थापना १३

३.१ पद्मावती की संस्थापना ३.२ वीरसेन का शिलालेख, ३.३ पद्मावती का वनस्पर, ३.४ कुषाण-शासन और पद्मावती, ३.५ पद्मावती के नवनाग, ३.६ भार-शिव, ३.७ भारशिव वंश की स्थापना एवं शाखाएँ, ३.८ पद्मावती शाखा, ३.९ विरुदावली, ३.१० पद्मावती के शासक, ३.११ विन्ध्यशक्ति, ३.१२ भवनाग और महरोली का स्तम्भ, ३.१४ नाग साम्राज्य का पतन, ३.१५ नागों की शासन-प्रणाली, ३.१६ संघीय शासन का स्वरूप, ३.१७ गणराज्यों की समाप्ति

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अध्याय ४

पद्मावती के ध्वंसावशेष ३९

४.१ संगृहीत वस्तुएँ, ४.२ कुषाणों से पूर्व के स्मृति-चिह्न, ४.३ माणिभद्र यक्ष ४.४ मानवाकार नन्दी, ४.५ उत्कृष्ट कलाकृतियाँ: मृण्मूर्तियाँ, ४.६ संगीत समारोह का अनुपम दृश्य, ४.७ विष्णु मूर्ति, ४.८ नाग राजा की मूर्ति, ४.९ सुवर्ण बिन्दु शिवलिंग, ४.१० नागों के राजकीय चिह्न, ४.११ बुद्ध प्रतिमा, ४.१२ ताड़-स्तम्भ शीर्ष, ४.१३ सूर्य स्तम्भ-शीर्ष, ४.१४ नागवंशीय सिक्के

अध्याय ५

पद्मावती का वास्तु-शिल्प ६१

५.१ प्राचीन ईंटें, ५.२ पद्मावती का दुर्ग, ५.३ धूमेश्वर महादेव का मन्दिर, ५.४ पद्मावती का विष्णु मन्दिर, ५.५ भूमरा का शिव मन्दिर, ५.६ मुस्लिम मकबरे

अध्याय ६

पद्मावती के नवनागों की धर्म-साधना ६८

६.१ अश्वमेध यज्ञ ६.२ नागों की विष्णु-पूजा, ६.३ शैवोपासना, ६.४ धन का भण्डारी कुबेर, ६.५ सार्थवाहों के आराध्य यक्ष, ६.६ उपासनाओं का समन्वय और हिन्दू धर्म का उदय, ६.७ गाय की पवित्रता, ६.८ नागर लिपि, ६.९ पद्मावती : एक पर्यवेक्षण

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची ७९

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चित्र-सूची

१—माणिभद्र यक्ष की मूर्ति (अग्र भाग), पद्मावती
२—माणिभद्र यक्ष की मूर्ति (पृष्ठ भाग), पद्मावती
३—माणिभद्र यक्ष का शिलालेख, पद्मावती
४—ताड़-स्तम्भ शीर्ष, पद्मावती
५—ताड़-स्तम्भ शीर्ष, पद्मावती
६—विष्णु मन्दिर का सूर्य-स्तम्भ शीर्ष, पद्मावती
७—नागों की रुद्र-पूजा, मोहेंजोदरो
८—विष्णु, पद्मावती
९—विष्णु मूर्ति, पद्मावती
१०—नागराजा की प्रतिमा, फिरोजपुर (विदिशा)
११—भारशिवनाग, कला भवन, काशी
१२—नागराजा की प्रतिमा, पद्मावती
१३—नागराजा की मूर्ति, पद्मावती
१४—नागराजा की मूर्ति, (अग्र भाग), साँची
१५—नन्दी, (अग्र भाग) पद्मावती
१६—नन्दी (पृष्ठभाग), पद्मावती
१७—अधिराज श्री भवनाग की मुद्राएँ
१८—ज्येष्ठ (मित्र या नाग ?) की मुद्राएँ
१९—स्कन्दनाग की मुद्रा
२०—माहेश्वर नाग की मुद्रा, लाहौर
२१—विष्णु मन्दिर, पद्मावती
२२—गीत-नृत्य-दृश्य, विष्णु मन्दिर, पद्मावती
२३—गीत-नृत्य की नर्तकी पद्मावती
२४—वाद्य तथा वादिका, १, पद्मावती
२५—वाद्य तथा वादिका, २, पद्मावती
२६—वाद्य तथा वादिका, ३, पद्मावती

—तेरह—

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२७—वाद्य तथा वादिका, ४, पद्मावती
२८—वाद्य तथा वादिका, ५, पद्मावती
२९—वाद्य तथा वादिका, ६, पद्मावती
३०—छत्रधारिणी, पद्मावती
३१—नागछत्र युक्त मृण्मूर्तियाँ, पद्मावती
३२—मृण्मूर्ति का सिर, १, पद्मावती
३३—मृण्मूर्ति का सिर, २, पद्मावती
३४—मृण्मूर्ति का सिर, ३, पद्मावती
३५—मृण्मूर्ति का सिर, ४, पद्मावती
३६—मृण्मूर्ति का सिर, ५, पद्मावती
३७—मृण्मूर्ति का सिर, ६, पद्मावती
३८—धूमेश्वर महादेव का मन्दिर, पवाया
३९—जलप्रपात, सिन्धु नदी, पवाया
४०—प्राकृतिक दृश्य, पवाया

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अध्याय एक

पद्मावती

१.१ पद्मावती का नाम लेने के साथ ही आज इस बात की कल्पना स्वाभाविक नहीं कि यह किसी प्राचीन नगरी का नाम होगा। यहाँ तक कि कोषकार भी 'पद्मावती' शब्द के अर्थ-विश्लेषण में उस संकेत को भूल जाते हैं, जो पुराणों में मिलता है। कोषकार ने पद्मावती के ९ अर्थ दिये हैं।[१] किन्तु इन अर्थों में उस अर्थ की ओर कोई संकेत नहीं, जिसके आधार पर पद्मावती को वर्तमान पद्म-पवाया के रूप में पहचाना जा सके। खेद का विषय है कि इस प्राचीन वैभवशाली नगर को इस प्रकार भुला दिया गया। ईसा की प्रथम चार-पाँच शताब्दियों तक यह नगर हिन्दू संस्कृति का एक प्रमुख केन्द्र था। प्राचीन वैभव और उत्कर्ष का यह सूर्य किस प्रकार अस्त होता गया, इस बात का उल्लेख तक नहीं मिलता। विजेता शक्ति विजित शक्ति के गुणों से किसी-न-किसी रूप में तो लाभान्वित होती ही है। इतिहास में ऐसे उदाहरण कम मिलेंगे, जब विजेता शक्ति ने विजित शक्ति के वैभव पर इस प्रकार पर्दा डाला हो। पद्मावती में एक भव्य मन्दिर को एक भोंडे आयताकार चबूतरे के द्वारा आच्छादित कर दिया गया था। उत्खनन कार्य के द्वारा ही मन्दिर की परि-कथा को पुनर्जीवन मिला है।

आगामी पृष्ठों में इस नगरी के उत्कर्षापकर्ष का विवरण प्रस्तुत किया गया है। हर्ष का विषय है कि अब तक ऐसे साक्ष्य उपलब्ध हो चुके हैं, जिनके आधार पर पद्मावती का परिगत स्वरूप स्पष्ट रेखाओं के द्वारा अंकित किया जा सकें।

---

१. ये ९ अर्थ हैं :—(१) एक मात्रिक छन्द, (२) अपने समय की लोकप्रिय प्रचलित कथा के अनुसार महाकवि जायसी रचित 'पद्मावत' महाकाव्य के अनुसार सिंहल की एक राजकुमारी जिससे चित्तौर के राजा रतनसेन ब्याहे थे, (३) पटना नगर का एक प्राचीन नाम, (४) पन्ना नगर का प्राचीन नाम, (५) उज्जयिनी का एक प्राचीन नाम, (६) मनसादेवी, (७) कश्यप ऋषि की कन्या और जरत्कारु ऋषि की पत्नी, (८) जयदेव कवि की स्त्री, (९) एक नदी का नाम। रामचन्द्र वर्मा, संक्षिप्त हिन्दी शब्द-सागर, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०१४ वि०।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१.२ स्थान निर्धारण

पवाया, जिसे 'पद्म-पवाया' अथवा 'पदम-पवा' कहा जाता है, मध्य रेलवे के डबरा स्टेशन से लगभग साढ़े तेरह मील दूर स्थित है। डबरा ग्वालियर से चालीस मील दक्षिण है। डबरा से एक सड़क भितरवार के लिए जाती है। उसी सड़क पर ९ मील चलने पर बैलगाड़ी का एक कच्चा रास्ता मिलता है। इसी मार्ग पर साढ़े चार मील की यात्रा कर लेने पर हमें उस प्राचीन नगरी के दर्शन होते हैं, जिसे आज पवाया कहा जाता है। उसका ऐतिहासिक नाम पद्मावती है।

पद्मावती का नाम पवाया कब हो गया, इस विषय में कोई उल्लेखनीय साक्ष्य नहीं मिलता। जनमुख पर आज भी पवाया का 'पदम-पवाया' नाम रूढ़ है। 'पदम' पद्मावती का ही संक्षिप्त रूप है। प्राचीन पद्मावती नगरी पवाया और उसके आस-पास के क्षेत्र में बसी हुई थी। इस सम्बन्ध में गाँवों को अभिहित करने की एक सामान्य प्रवृत्ति का उल्लेख करना समीचीन होगा। किसी गाँव की स्थिति के सही-सही निरूपण के लिए उसके निकटवर्ती गाँव का नाम उसके साथ मिला कर बोला जाता है। दो गाँवों के युग्म बना कर उनका उल्लेख करने की प्रवृत्ति भारत के विभिन्न भागों में बहुत प्राचीन काल से मिलती है। पवाया के निकटवर्ती गाँवों में प्रचलित इस प्रवृत्ति का उल्लेख करना अधिक उपयुक्त होगा। इस प्रकार के युग्म हैं : पवापचपेड़िया (पवाया के पास का एक गाँव पचपेड़िया भी है) रायपुर धमकन (रायपुर के सही स्थान निर्धारण के लिए धमकन के साथ युग्म बनाया गया है, यह रायपुर एक छोटा-सा गाँव है), करेरा-पिछोर तथा डबरा-पिछोर (पिछोर दो हैं, एक करेरा के पास और दूसरा डबरा के पास) (उक्त युग्मों से दोनों की स्थिति का बोध कराया गया है), पौहरी-सिरसौद तथा सिरसौद-करेरा (सिरसौद दो अलग-अलग गाँव हैं, एक करेरा के निकट और दूसरा पौहरी के निकट), बदरवास-पिछोर तथा कोलारस-बदरवास (बदरवास भी दो भिन्न-भिन्न स्थान हैं, एक कोलारस के पास दूसरा पिछोर के पास)। पवाया के साथ भी पदम का उच्चारण इसी अथवा इससे मिलते-जुलते तथ्य को प्रकट करता है।

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या पवाया के साथ प्रयुक्त पदम अंश के आधार पर ही पद्मावती को पहचाना जा सकता है? यह बात सही है कि इस साक्ष्य को सम्पूर्ण साक्ष्य नहीं कहा जा सकता। किन्तु अन्य साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में इसका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। पवाया को ऐतिहासिक पद्मावती के रूप में पहचानने के लिए इतिहासकारों ने जो प्रयत्न किये हैं वे सराहनीय होने के साथ-साथ निर्णायक भी सिद्ध हुये। अब यह बात निस्संदेह सत्य है कि वर्तमान पवाया तथा उसके निकटवर्ती क्षेत्र का नाम पद्मावती था। यह एक भव्य नगर था और नवनाग साम्राज्य की राजधानी था। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में यह संस्कृति का एक प्रसिद्ध केन्द्र था।

१.३ पद्मावती का नामोल्लेख

पद्मावती के सम्बन्ध में प्राचीनतम नामोल्लेख हमें 'विष्णु पुराण' में मिलता है, यथा,

For Private and Personal Use Only

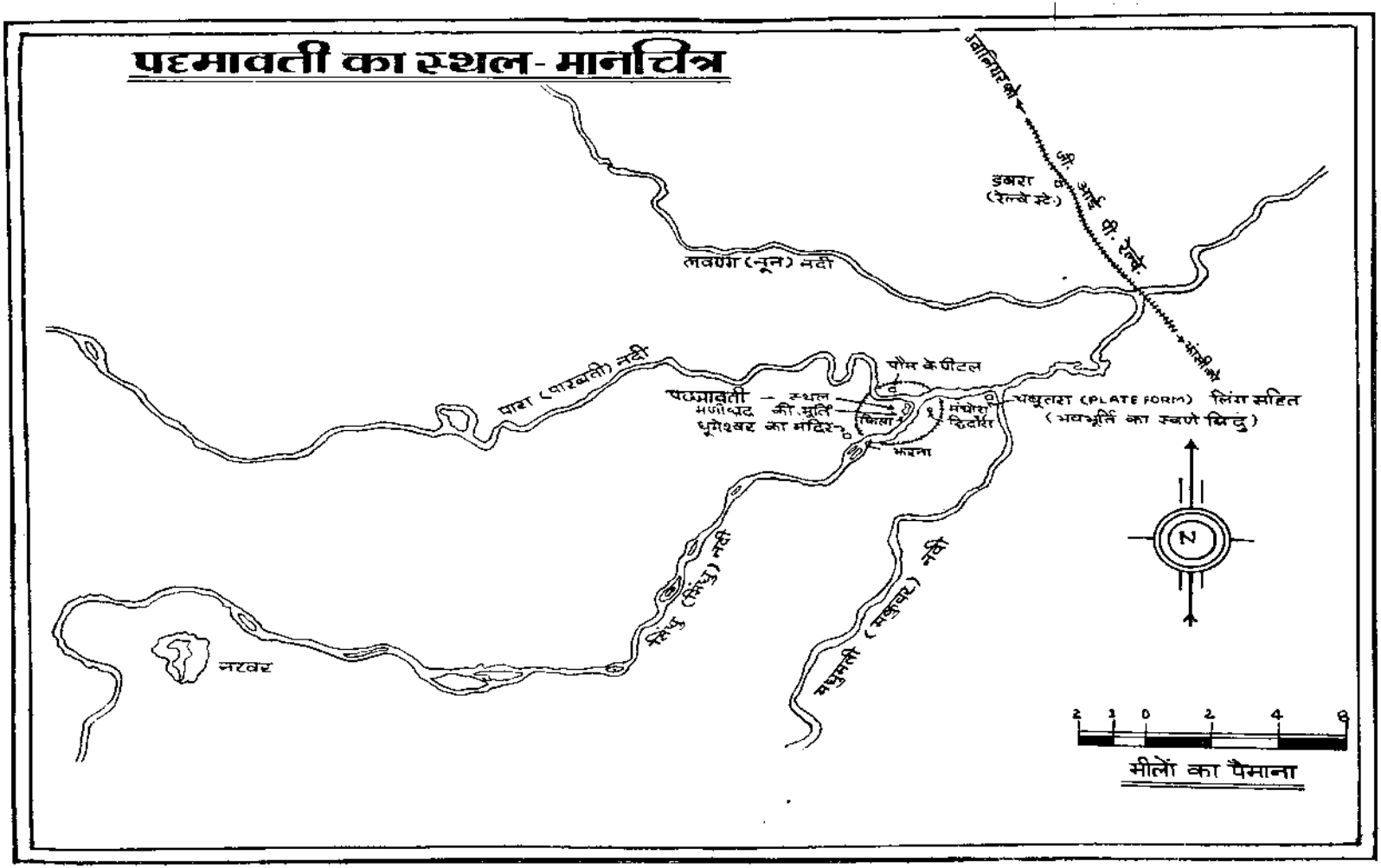

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra
www.kobatirth.org
Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir
For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

"नवनागास्तु भोक्ष्यंति पुरी पद्मावती नृपा : मथुरांच पुरीं रम्यां नागा भोक्ष्यंति सप्त वै।" तथा, "नवनागाः पद्मावत्यां कांतिपुर्यां मथुरायां"। इस प्रकरण से यह बात सिद्ध हो जाती है कि नव नागों ने पद्मावती, कान्तिपुरी एवं मथुरा में अपनी राजधानियाँ बना कर राज्य किया। विष्णु पुराण के इस उल्लेख में पद्मावती एवं कान्तिपुरी की स्थिति के विषय में कोई संकेत नहीं मिलता। मथुरा के सम्बन्ध में तो कभी कोई विवाद उपस्थित नहीं हुआ, उसका प्राचीन और अर्वाचीन एक ही नाम बना रहा। किन्तु पद्मावती और कान्तिपुरी के सम्बन्ध में इतिहासकारों में बड़ा विवाद बना रहा। डॉ० अल्तेकर ने तो यहाँ तक कह दिया कि मिर्जापुर के समीप वाली कान्तिपुरी में कभी भी नागवंश का शासन नहीं रहा।

१.४ पद्मावती तथा कान्तिपुरी सम्बन्धी विवाद का इतिहास

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि पुराणों का उपर्युक्त कथन क्या आंशिक रूप से ही सत्य है? श्री विल्सन एवं श्री कनिंघम कान्तिपुरी को वर्तमान कुतवार के रूप में पहचानते हैं। ग्वालियर राज्य के पुरातत्व विभाग के भूतपूर्व संचालक श्री मो० वा० गर्दे उक्त दोनों विद्वानों के मत से सहमत हैं। ग्वालियर राज्य के पुरातत्व विभाग के संवत् १९९० के वार्षिक विवरण में इस प्रश्न पर निर्णायक ढंग से विचार किया है। किन्तु डॉ० काशी प्रसाद जायसवाल मिर्जापुर जिले के कंतित को ही कान्तिपुरी मानते हैं। डॉ० अल्टेकर डॉ० जायसवाल के इस मत से सहमत नहीं हैं। उनका मत है—"इस बात का कोई आधार नहीं है कि कान्तिपुरी पर किसी नागवंश का कभी राज्य रहा था, अथवा सिक्कों पर नव नामक राजा नाग था। उसके सिक्के कान्तिपुरी में नहीं मिले हैं, और किसी भी ज्ञात नाग सिक्के से उसकी समानता नहीं।" किन्तु डॉ० अल्तेकर की इस धारणा का आधार ही गलत है। कंतित यदि कान्तिपुरी नहीं तो वहाँ नागवंशों के सिक्के मिलने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इस आधार पर यह कहना भी त्रुटिपूर्ण है कि किसी कान्तिपुरी पर किसी नागवंश का शासन ही नहीं रहा था। कुतवार में यदि उत्खनन का कार्य किया जाय तो स्थिति कुछ अधिक स्पष्ट हो सकेगी। वैसे वहाँ एक ही निधि में लगभग १८,००० से भी अधिक नाग सिक्के प्राप्त हुए हैं। इतने अधिक सिक्कों का मिलना एक महत्वपूर्ण बात है। कुतवार की स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए कनिंघम ने एक जनश्रुति का भी उल्लेख किया है। उसके अनुसार पदावली, सुहानियाँ एवं कुतवार किसी समय एक ही नगर के भाग थे तथा ये बारह कोस के विस्तार में फैले हुये थे। कनिंघम ने कुतवार को अत्यन्त प्राचीन नगर माना है। इससे इस सम्भावना को और भी बल मिलता है कि वर्तमान कुतवार का ही नाम कान्तिपुरी रहा होगा।[१]

स्थान निर्धारण के सम्बन्ध में जैसा विवाद कान्तिपुरी के सम्बन्ध में उपस्थित हो गया था वैसा ही विवाद पद्मावती के सम्बन्ध में बना रहा। श्री विल्सन ने सर्वप्रथम पद्मावती को

१. कनिंघम की सर्वेक्षण रिपोर्ट—खंड २, पृष्ठ ३०३।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उज्जयिनी (उज्जैन) के रूप में पहचाना।[१] किन्तु इस स्थापना से वह स्वयं सन्तुष्ट न हो सके और उन्होंने एक अन्य स्थापना को स्थान दिया जिसके अनुसार पद्मावती को वर्तमान औरंगाबाद अथवा बरार के आस-पास ठहराया गया। एक सम्भावना यह भी व्यक्त की गई कि यह कहीं विदर्भ (बरार) में स्थित पद्मापुर तो नहीं जिसका वर्णन कवि एवं नाटककार भवभूति ने किया है। किन्तु पद्मावती और पदमपुर के नामों में आंशिक ध्वन्यात्मक साम्य तो है, इससे अधिक कोई ऐतिहासिक साम्य नहीं तथा न इसका समर्थन ऐतिहासिक तथ्यों के द्वारा ही होता है। इसके पश्चात् विल्सन ने एक अन्य सम्भावना की ओर संकेत किया है जिसके अनुसार पद्मावती को वर्तमान भागलपुर के स्थान पर पहचाना गया है। यह गंगा के किनारे पर बसा हुआ था।[२]

किन्तु श्री विल्सन की एक भी धारणा सत्य न निकली। विष्णु पुराण में जिन तीन नामों का उल्लेख किया गया है, यथा, पद्मावती, कान्तिपुरी और मथुरा, उनके विषय में श्री कनिंघम द्वारा किया गया संकेत विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके मतानुसार पद्मावती को मथुरा से बहुत अधिक दूर नहीं खोजना चाहिये। इस आधार पर उन्होंने श्री विल्सन की समस्त धारणाओं को असिद्ध कर दिया। उन्होंने पद्मावती को वर्तमान नरवर के रूप में पहचाना, जो कि मथुरा से लगभग १५० मील की दूरी पर स्थित है।[३] श्री कनिंघम की इस धारणा का एक आधार वे सिक्के थे, जो नागवंश के थे और नरवर के आस-पास मिले थे। दूसरे उन चार नदियों को भी यही पहचाना है जिनका उल्लेख मालती माधव में किया है। श्री कनिंघम को मालती माधव में उल्लिखित पद्मावती की भौगोलिक स्थिति का परिचय श्री विल्सन के द्वारा अनूदित मालती माधव के अंग्रेजी के अनुवाद के द्वारा हुआ होगा। यद्यपि कनिंघम की स्थापना श्री विल्सन की स्थापना से कहीं अधिक युक्तिसंगत है, किन्तु सत्य के निकट पहुँचकर भी यह धारणा सत्य नहीं हो पाई। यह बात तो मानी जा सकती है कि नरवर भी नागवंश की राजधानी पद्मावती के अन्तर्गत आता होगा। नागवंश के सिक्कों के मिलने का यही सबसे बड़ा कारण हो सकता है। किन्तु पद्मावती के स्थल की सही-सही पहचान करने में कनिंघम से तनिक सी भूल हो गई। इसका कारण यह है कि उन्होंने मालती माधव में वर्णित नदियों की स्थिति की ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त नहीं की। हाँ, इस बात का श्रेय उन्हें अवश्य दिया जाना चाहिए कि वे भवभूति द्वारा इंगित सिन्धु, पारा, लवणा और मधुमती नदियों को वर्तमान सिन्धु, पार्वती, नून और महुअर नदियों के रूप में पहचान पाये। नदियों की सही-सही स्थिति को समझ कर पद्मावती को चिह्नित करने का कार्य ही शेष रह गया था जिसे श्री एम० बी० लेले ने पूरा कर दिया। उन्होंने 'मालती माधव-सार आणि विचार' नामक एक छोटी सी पुस्तक मराठी में लिखी है। सर्वप्रथम इस पुस्तक में उन्होंने यह संकेत किया है कि वर्तमान पवाया के स्थान पर अथवा उसके निकटवर्ती क्षेत्र पर

---

१. थियेटर ऑव दि हिन्दूज, खंड २, मालती तथा माधव, पृष्ठ ९५ की टिप्पणी।
२. विल्सन का विष्णु पुराण, पृष्ठ ४८० की टिप्पणी।
३. कनिंघम की सर्वेक्षण रिपोर्ट, खंड २, पृष्ठ ३०३।

For Private and Personal Use Only

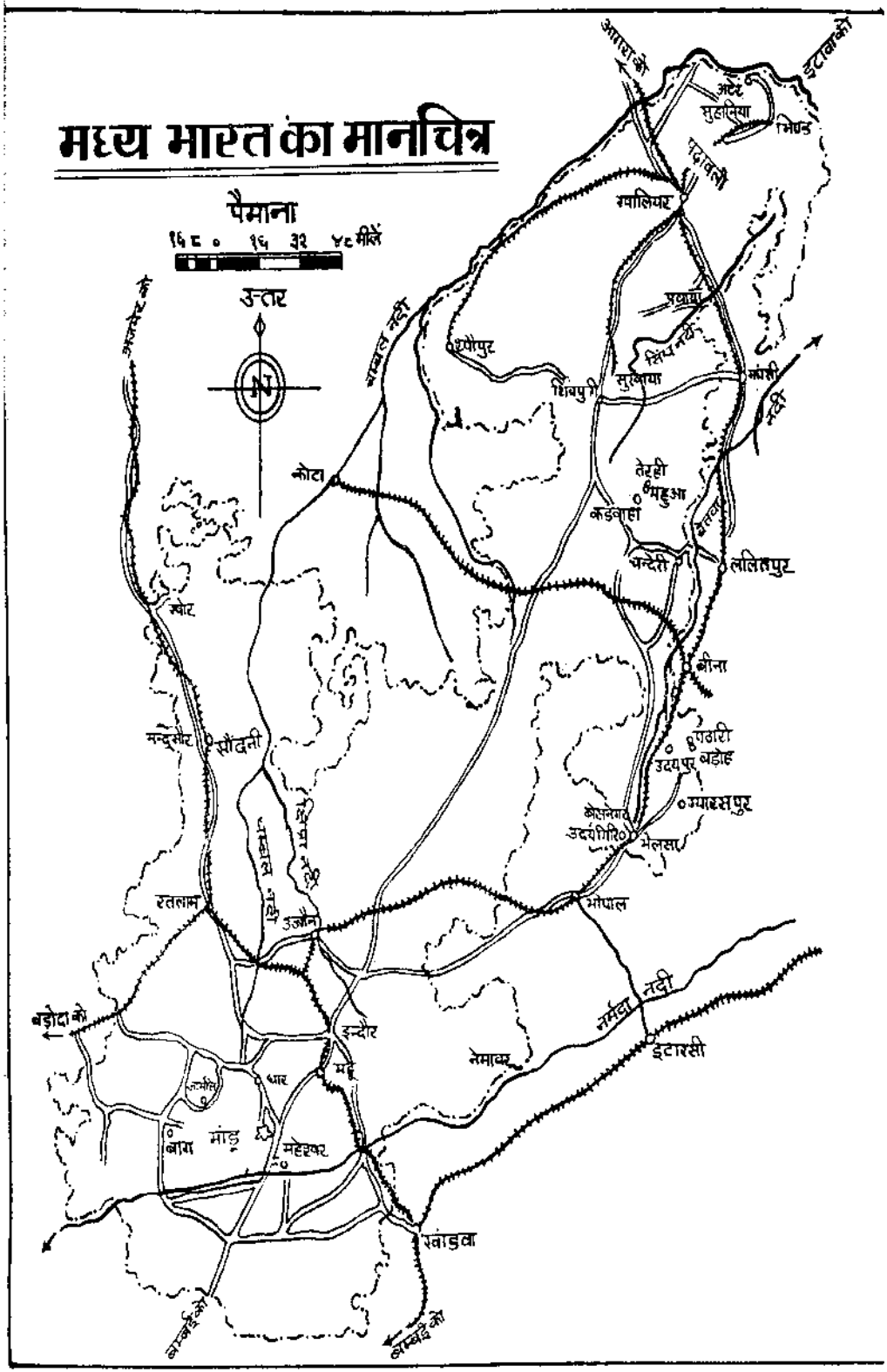

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पद्मावती नामक भव्य नगरी बसी हुई थी। इसके पश्चात श्री गर्दे ने उत्खनन का कार्य कराया और अब इस विषय में कोई शंका ही नहीं रह गई। पद्म-पवाया निश्चित रूप से पद्मावती का ही भग्नावशेष है। इसमें अब दो मत नहीं।

१.५ पद्मावती सम्बन्धी जनश्रुति

ऐतिहासिक अवशेषों के साथ-साथ श्री गर्दे ने जन-परम्परा का भी साक्ष्य प्रस्तुत किया है, जो विचारणीय है। पवाया के निवासी अपने नगर को प्राचीन पद्मावती के रूप में पहचानते हैं। यह पीढ़ी दर पीढ़ी चली आई हुई बात है। नगरवासियों का यह विश्वास कि उनका नगर अति प्राचीन काल में किसी नागवंश की राजधानी रहा था, विचार करने योग्य है। इस सम्बन्ध में श्री मो० वा० गर्दे ने एक जनश्रुति का भी उल्लेख किया है। उनके अनुसार एक जनश्रुति में दो राजाओं का उल्लेख आता है। एक है धुन्दपाल, जिसे धन्यपाल भी कहा जाता है, और दूसरा है पुन्यपाल अथवा पुण्यपाल। इनमें से धुन्दपाल को पद्मावती का चक्रवर्ती सम्राट् कहा जाता है। एक समय की बात है राजा अपने न्यायालय में बैठा हुआ था। गर्मी का मौसम था। राजा को पसीना आ गया। क्रोध में राजा ने आदेश दिया कि सूर्य को पकड़ लिया जाए, क्योंकि परेशानी का कारण वही सिद्ध हो रहा था। उस समय अन्य देवी-देवताओं की उपासना के साथ सूर्य की उपासना भी प्रचलित रही होगी। राजा की इस अधार्मिक वृत्ति पर देवी, जो नगर देवी के नाम से जानी जाती थी, अप्रसन्न हो गई। उसने शाप दिया कि नगर नष्ट हो जाये। परिणामतः नगर नष्ट हो गया। इस जनश्रुति से उक्त राजा के क्रोधी स्वभाव का ही परिचय मिलता है। इसमें उस राजा के वंश का उल्लेख नहीं किया गया है। यह बात तो सत्य है कि पद्मावती पर परमार वंश के राजाओं का राज्य रहा था। धुन्दपाल उस वंश का एक शक्तिशाली राजा था, जिसने किले का निर्माण कराया था। किन्तु वर्तमान किले के सम्बन्ध में यह सुना जाता है कि इसे नरवर के कछवाहा राजाओं ने बनवाया था। यह राजा दिल्ली सल्तनत का करदाता था।

यह बात सही है कि जनश्रुति इतिहास का रूप नहीं ले सकती। किन्तु प्राचीन इतिहास के किसी-न-किसी अंग पर जनश्रुति का प्रभाव पड़ता है, इसे अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता। जनश्रुति का कुछ-न-कुछ तो आधार होता ही है। उक्त जनश्रुति में चाहे और कोई बात सच न हो किन्तु यदि केवल इतनी ही बात सच हो कि पद्मावती पर कोई राजा राज्य करता था तो इससे आगे का मार्ग प्रशस्त हो जाता है एवं पद्मावती को किसी राज्य की राजधानी माना जा सकता है। केवल यह निश्चय करना शेष रह जाता है कि यह राज्य कौन सा था।

१.६ वती : वाया—एक उल्लेख

ऊपर इस बात पर तो विचार किया ही जा चुका है कि पदम पवाया में जो 'पदम' अंश है वह पद्मावती का स्मरण कराता है। श्री गर्दे ने इस परिवर्तन पर एक अन्य दृष्टिकोण से भी विचार किया है। उन्होंने वती के वाया में परिवर्तन को भी मान्यता दी है। इसी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रकार का एक अन्य उदाहरण सुरवाया का है। सुरवाया के सम्बन्ध में प्राप्त शिलालेख के सम्बन्ध में उन्होंने बताया है कि सुरवाया का प्राचीन नाम 'सरस्वती' दिया गया है। सुरवाया रूप की निष्पत्ति 'वती' के स्थान पर वाया के प्रयोग द्वारा हुई। इसी प्रकार पद्मावती के अन्तिम 'वती' का वाया बन गया होगा। यद्यपि भाषा में परिवर्तन तो बड़े अटपटे ढंग से हो जाया करते हैं, किन्तु वती का वाया हो गया होगा इस विषय में एक शिलालेख के अतिरिक्त और दूसरा प्रमाण नहीं मिलता। अतएव वती के वाया हो जाने और पद्मा के दमा अंश का लोप हो जाने के विषय में निर्णायक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ध्वनि के इस परिवर्तन का समर्थन ध्वनि विज्ञान द्वारा नहीं होता। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि पवाया के स्थान पर पद्मावती को पहचानने में कोई कठिनाई उपस्थित हो रही हो। नाम के परिवर्तन की बात जाने दीजिये, अन्य ऐतिहासिक साक्ष्य इतनी अधिक मात्रा में मिल गये हैं कि अब इस विषय में कोई संदेह शेष नहीं रह गया है।

अब तो आवश्यकता केवल इस बात की है कि पद्मावती के सम्बन्ध में अधिक-से-अधिक सामग्री प्राप्त हो जिससे कि इसकी परिगत कथा को शृंखलाबद्ध किया जा सके। पद्मावती के अवशेषों के संकलन की समस्या जितनी महत्वपूर्ण है उस संकलित सामग्री के विधिवत विश्लेषण की समस्या इससे कम महत्व की नहीं।

●

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra
www.kobatirth.org
Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir
For Private and Personal Use Only

पद्मावती (पवाया) का मानचित्र

पैमाना १ इंच = २ मील

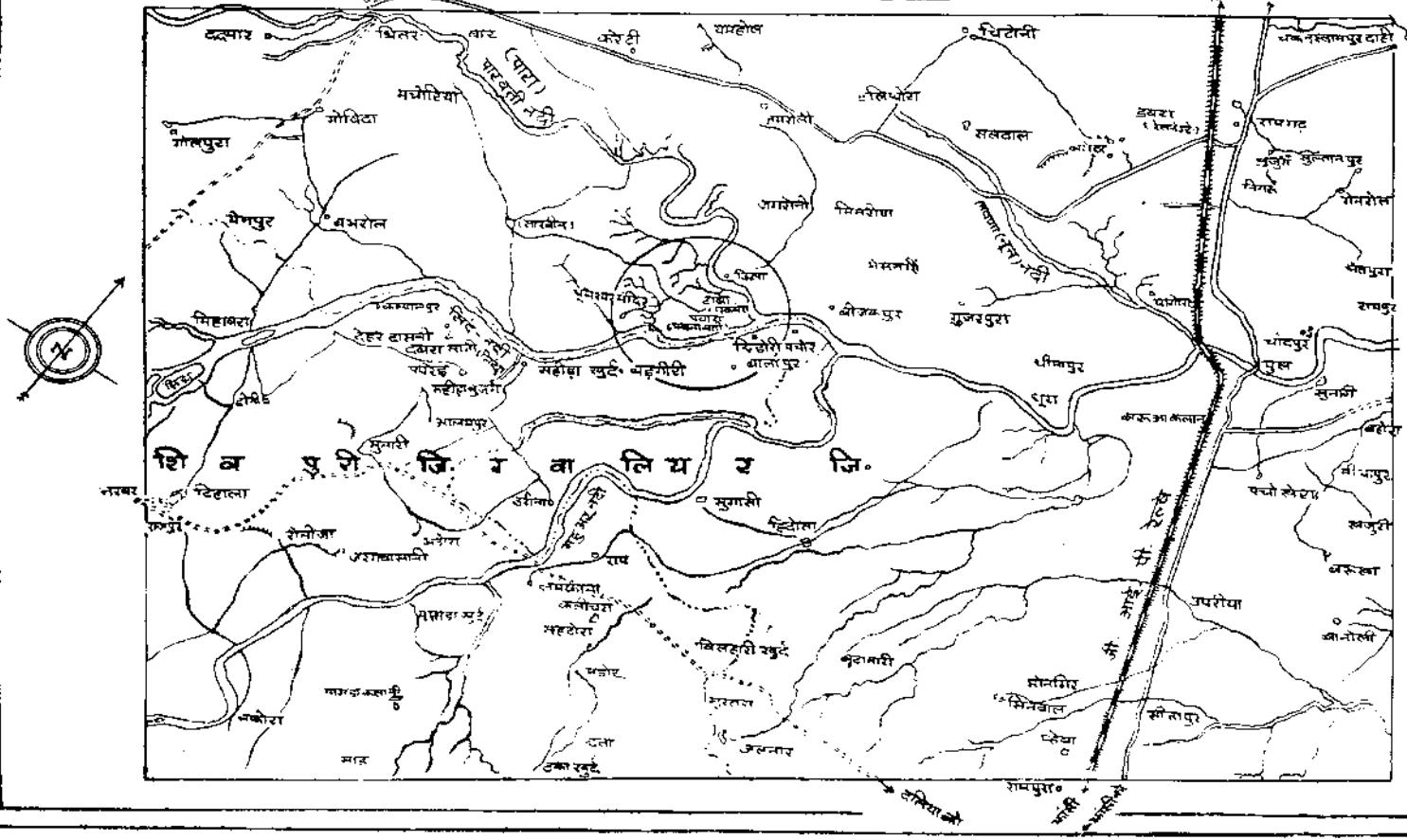

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अध्याय दो

साहित्य और इतिहास

कोई साहित्यिक रचना ऐतिहासिक दृष्टि से क्या निर्णायक साक्ष्य प्रस्तुत कर सकती है, यह भी एक गम्भीर प्रश्न है। यदि अन्य कोई ऐतिहासिक साक्ष्य प्राप्त नहीं होता, तो किसी भी साक्ष्य को निर्णायक मान कर चलना तो उचित नहीं ठहराया जा सकता है। किन्तु पद्मावती के स्थान-निर्धारण करने में यह समस्या उत्पन्न नहीं होती। पवाया के निकटवर्ती क्षेत्र से प्राप्त पुरातत्वीय अवशेष इस बात को सिद्ध कर सकते हैं कि यह कोई प्राचीन ऐतिहासिक नगर होना चाहिये। मालती माधव में तो इस नगर को अत्यन्त समृद्ध और उन्नत बताया गया है। यह ऐश्वर्य-सम्पन्नता मध्य काल तक बनी रही होगी। इस नगर की प्राचीनता तो वे सिक्के सिद्ध कर देते हैं, जो वर्षों से मिलते रहे हैं। प्राचीन ईंटों के बने स्मारक तथा पाषाण और मिट्टी की बहुसंख्यक कलाकृतियाँ भी इस नगर की भव्यता को सिद्ध कर देती हैं। नागवंश के इतनी अधिक मात्रा में प्राप्त सिक्के इस बात का भी साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं कि यह नगर कभी नागों के संरक्षण में फला-फूला था।

पद्मावती गुप्त काल से पूर्व एक ऐश्वर्यशाली नगर था। समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तम्भ लेख में उन राजाओं की सूची दी गई है जिनको उसने पराजित किया था। इन राजाओं में गणपति नाग का नाम भी आता है। वैसे तो पद्मावती के खण्डहरों में उस नागवंशीय राजधानी के ध्वंसावशेषों को पहचाना जा सकता है और इस बात का परिचय भी मिल ही जाएगा कि ये अवशेष आगे चल कर गुप्तों से भी प्रभावित हुये। किन्तु नरवर में ऐसा कोई अभिलेख प्राप्त नहीं हुआ जिससे यह सिद्ध किया जा सके कि यह नागवंश की राजधानी रहा होगा। इस प्रकार प्राचीन स्मारकों को साक्ष्य की कसौटी पर कसने पर भी यही सिद्ध होता है कि वर्तमान पवाया ही ऐतिहासिक पद्मावती होगा। इस दृष्टि से श्री कनिंघम की नरवर के सन्निकटवर्ती प्रदेश वाली स्थापना असिद्ध हो जाती है।

२.१ पुराण

पद्मावती के सम्बन्ध में सर्वप्रथम साक्ष्य प्रस्तुत करने वाली कृतियाँ हैं पुराण। प्रारम्भ में तो 'नव नागास्तु भोक्ष्यंति पुरीम् पद्मावतीम् नृपाः' के आधार पर पद्मावती के नागों को

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संख्या नौ निर्धारित की जाती रही, किन्तु कालान्तर में 'नव' के 'नौ' अर्थ का परित्याग कर दिया गया और 'नव' शब्द पद्मावती, कान्तिपुरी और मथुरा के नवनागों के अर्थ का द्योतक बन गया। विष्णु पुराण में नवनागों के जिन राज्यों के विस्तार का उल्लेख किया गया है उनमें पद्मावती भी है। विष्णु पुराण का उल्लेख है—'नवनागाः पद्मावत्यां कान्तिपुर्यां मथुरायामनुगंगा प्रयागं मागधा गुप्ताश्च भोक्ष्यंति'। इसका तात्पर्य यह है कि जब नव नाग पद्मावती, कान्तिपुरी और मथुरा में राज्य कर रहे थे तब मगध के लोगों के साथ गुप्त गंगा तट वाले प्रयाग में राज्य करने लगे। डॉ० काशी प्रसाद जायसवाल ने 'अनुगंगा प्रयागं मागधा गुप्ताश्च भोक्ष्यन्ति' का आशय 'मागध गुप्त लोग गंगा तट वाले प्रयाग पर राज्य करते थे'[१] से लिया है। किन्तु इससे नवनागों के पद्मावती, कान्तिपुरी और मथुरा पर राज्य करने सम्बन्धी तथ्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

पुराणों में अश्वमेध यज्ञ करने वाले स्वतन्त्र शासकों की सूची भी दी गई है। आज जिन नाग राजाओं के पद्मावती पर शासन करने का उल्लेख किया जाता है उनमें से अधिकांश का उल्लेख पुराणों में मिलता है। जिन राजाओं का उल्लेख पुराणों में नहीं मिलता, उस कमी को सिक्के तथा अन्य प्रमाण पूरा कर देते हैं। किन्तु नवनागों के पद्मावती पर शासन करने का सर्वप्रथम उल्लेख पुराणों में मिलता है।

२.२ बाणभट्ट का हर्षचरित

पद्मावती का उल्लेख करने वाली दूसरी कृति है बाणभट्ट का 'हर्षचरित'। यह ईसा की सातवीं शताब्दी की कृति मानी जाती है। 'हर्षचरित' का उल्लेख है : 'नागकुल जन्मनः सारिका श्रावित मंत्रस्यासीन्नाशो नागसेनस्य पद्मावत्यां'। इस उल्लेख के द्वारा तो नागवंशीय शासक नागसेन के विनाश का ही बोध होता है, परन्तु इससे पद्मावती की स्थिति का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता। पद्मावती पर नागों ने शासन किया, इस बात पर कोई मतभेद नहीं है।

'हर्षचरित' के इस उल्लेख से एक अन्य तथ्य पर अवश्य प्रकाश पड़ता है। बाणभट्ट ने जिस सहज भाव से पद्मावती का उल्लेख किया है, उससे एक बात का तो अनुमान लगाया ही जा सकता है कि उसके समय में पद्मावती नगर कोई अपरिचित नगर नहीं रहा होगा जिसकी स्थिति के स्पष्टीकरण का प्रयास करने की आवश्यकता अनुभव की जाती हो। सातवीं शताब्दी में पद्मावती का गौरव अक्षुण्ण रहा होगा, जिसके उल्लेख मात्र के द्वारा ही उसकी स्थिति का स्पष्टीकरण हो जाता होगा। साथ ही 'पद्मावती' उस समय एक सुपरिचित नगर रहा होगा। कालान्तर में तो पद्मावती की स्थिति ही नितांत भ्रामक और अनिश्चित हो गई। साथ ही सिक्कों की प्राप्ति निरंतर न होती रहती और उत्खनन का कार्य न किया जाता तो आज भी पवाया के रूप में पद्मावती को पहचानना दुरूह हो जाता।

---

१. अं० यु० भा०, पृष्ठ २६६।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२.३ 'मालती माधव' में पद्मावती

संस्कृत कवि एवं नाटककार श्री भवभूति ने अपने नाटक 'मालती माधव' में पद्मावती वती का जो उल्लेख किया है वह विशेष रूप से महत्व का है। इस वर्णन से पद्मावती के प्राचीन गौरव पर प्रकाश पड़ता है। नवें अंक के प्रारम्भ में कामंदकी की पूर्व शिष्या सौदामिनी के शब्द विशेष रूप से उद्धृत करने योग्य हैं :—

सौदामिनी—"यह मैं सौदामिनी हूँ। ऐश्वर्य सम्पन्न श्री पर्वत से पद्मावती राजधानी को प्राप्त कर वहां पर मालती के विरही होने से पूर्व परिचित देश को देखने में असमर्थ हो कर माधवजी गृह छोड़ कर मकरंद आदि मित्रों के समुदाय के साथ बड़ी द्रोंणां (नदी का मध्य स्थान), पर्वत, दुर्गम मार्ग इनसे परिपूर्ण स्थान हो गये हैं, ऐसा सुन कर मैं उनके पास जा रही हूँ। अरे, इस तरह से उड़ी हूँ कि जैसे सम्पूर्ण पर्वत, नगर ग्राम, नदी इनका समूह नेत्रों से देख रही हूँ। पीछे देख कर वाह वाह।"[१]

पद्मावती नगरी निर्मल जल वाली और विशाल सिंधु तथा पारा नदी के उपकरण के बहाने से उन्नत राजप्रासाद, देव मंदिर, नगर का द्वार और अट्टालिका इनके घर्षण से पहले विदारित और पीछे त्यक्त आकाश को जैसे धारण कर रही है।[२]

फिर भी, जिसकी तरंग परम्परा चल रही है। वह प्रसिद्ध लवणा नदी परिशोभित हो रही है। वर्षा के समय में देशवासियों के हर्ष के लिये जिसकी गर्भिणी गौओं के प्रिय और नये तृण विशेषों की पंक्ति को धारण करने वाली और सेवनीय स्थान वाली बनपंक्ति विशेष शोभित हो रही है।[३]

(दूसरी ओर देख कर) यह वही भगवती सिन्धु नदी का पाताल को विदारित करने वाला तटप्रपात है। जलपूर्ण गम्भीर शब्द वाले नये मेघ के गर्जन के सदृश प्रचण्ड जिस तट-

---

१. सौदामिनी :—एषास्मि सौदामिनी। भगवत: श्रीपर्वतादुपेत्य पद्मावतीं तत्र मालती विरहणो माधवस्य संस्तुत प्रदेश नासहिष्णोःसंस्त्यायं परित्यज्य सहसुहृद्वर्गेण वृहद् द्रोणी शैलकांतार प्रदेशमुपश्र त्याधुना तदन्तिकं प्रयामि। भोः, तथाहमुत्पतिता यथा सकल एव गिरि-नगर ग्राम सरिदरण्य व्यतिकरणश्च चक्षुषा परिशिच्यते। पश्चादविलोक्य, साधु साधु।

२. पद्मावती विमल वारिविशाल सिंधु
पारासरित्परिकरच्छलतो विभर्ति।
उत्तुङ्ग सौध सुरमन्दिर गोपुराट्ट
संघट्ट पाटित विमुक्तमिवांतरिक्षम्॥

३. अपिच,
सैषा विभाति लवणा वलितोर्मिपंक्ति
रभ्रागमे जनपदप्रमदाययस्याः।
गौर्गभिणी प्रियनवोलपमाल भारि
सेव्योपकण्ठ विपिनावलयो विभांति॥

२

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रपात में उत्पन्न यह तुमुल ध्वनि तटसीमा में अवस्थित पर्वतों के निकुंजों में बढ़ने से गणेश जी के कण्ठ गर्जन के सादृश्य को प्राप्त होती है।[१]

चंदन, सर्ज, सरल पाटल आदि से युक्त वृक्षों से दुर्गम और पके हुये बेल के फलों से सुगंधित ये वन और पर्वत के प्रदेश नवीन कदम्ब वन और जम्बू वनों से दृढ़ किये गये अंधकार से घने पर्वत लता गृहों में शब्द करने वाली गम्भीर गदगद ध्वनि निकालने से कठोर शब्द वाली गोदावरी नदी से शब्दयुक्त किये गये विशाल पर्वत के नितंब प्रदेश वाले दक्षिण के वन और पर्वतों का स्मरण करा रहे हैं। और ये मधुमती और सिंधु नामक नदियों के संगम को पवित्र करने वाले स्वतः सिद्ध स्थिति वाले भगवान महादेव 'सुवर्णबिन्दु' कहे जाते हैं। (प्रणाम कर)।

लोकों की उत्पत्ति करने वाले हे देव, आपकी जय हो। सब को वर देने वाले, वेदों के निधान हे भगवन्, आपकी जय हो। सुंदर चंद्र को शिरो भूषण बनाने वाले हे देव, आपकी जय हो। कामदेव का संहार करने वाले हे देव, आपकी जय हो। हे आदि गुरो, आपकी जय हो।[२]

भौगोलिक विश्लेषण

सौदामिनी के उक्त कथन से पद्मावती की भौगोलिक स्थिति के सम्बन्ध में निम्नलिखित संकेत प्राप्त होते हैं :—

१—पद्मावती दो नदियों से आवेष्टित थी, एक सिन्धु और दूसरी पारा। निर्मल जल वाली इन दोनों नदियों के वर्तमान नाम सिंध और पार्वती हैं।

२—इन दोनों नदियों से परिवेष्टित होने के अतिरिक्त पद्मावती उनके संगम पर स्थित थी। इन नदियों द्वारा निर्मित द्विशाखा पद्मावती का ही क्षेत्र था।

३—सिन्धु नदी में नगर के निकट ही एक जल प्रपात भी था। विल्सन ने तटप्रपात का अर्थ किया है तटों का गिरना। किन्तु वह इस प्रसंग में समीचीन प्रतीत नहीं होता। यहाँ उसका अर्थ जलप्रपात ही होगा।

---

१. अन्यतोविलोक्य
स एव भगवत्याः सिन्धोर्दारित रसातलस्तट प्रपातः
यत्रव्य एषतुमुलध्वनिरम्बुगर्भ
गंभीर नूतन घनस्तनितप्रचण्डः
पर्यन्तभूधरनिकुंज विजम्भणेन
हेरम्बकंठरसित प्रतिमानमेति ॥

२. एताश्चन्दनार्जवकर्ण सरल पाटला प्रायतरुगहनाः परिणतमालूर सुरभयोऽरण्य गिरि भूमयः स्मारयन्ति तरुण कदम्बजम्बू वनावबद्धान्धकार गुरुगिरिनिकुंज गुंजद्गंभीर गद्गदोदार घोरघोषणगोदावरी मुखरित विशाल मेखला भुवो दक्षिणारण्य भूधरान्। अयंच मधुमती सिंधुसंभेद पावनो भगवान्भवानीपतिरपौरुषेयप्रतिष्ठः सुवर्णबिन्दुरित्याख्यायते। (प्रणम्यामः)
जय देव भुवन भावन जय भगवन्नखिलवरद निगमनिधे।
जय रुचिर चन्द्रशेखर जय मदनांतक जयादि गुरो।
मालती माधवम्—नवमोअंक।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

४—सिन्धु और पारा नदियों का संगम तो था ही, नगर के निकट एक अन्य संगम भी था। यह सिन्धु और मधुमती नदियों के द्वारा निर्मित हुआ था। इसी संगम पर एक शिव मंदिर की स्थिति बताई गई है, जिसका नाम सुवर्ण बिन्दु दिया गया है।

५—उपर्युक्त तीन नदियों के अतिरिक्त एक चौथी नदी भी थी जो पद्मावती से बहुत दूर नहीं थी।

इस प्रकार पद्मावती की सही स्थिति सिन्धु और पारा (वर्तमान सिंधु और पार्वती) नदियों के संगम पर निर्णीत होती है। वर्तमान पवाया से लगभग दो मील की दूरी पर सिन्ध नदी में एक जलप्रपात भी है। 'मालती माधव' में जिस जलप्रपात की ओर संकेत किया गया है, वह सम्भवतः यही होना चाहिये। इसके साथ ही पवाया से दो मील की दूरी पर मधुमती नदी जिसे आज 'महुवर' कहा जाता है, देखी जा सकती है। 'मालती माधव' में सिंधु और मधुमती के संगम पर जिस सुवर्णबिन्दु मन्दिर का उल्लेख है, यह वही मन्दिर होना चाहिये। यहीं पर शिवलिंग को सहारा देने वाला चबूतरा भी है। फिर लवण, जिसका आज का नाम नून नदी है, पवाया से ४–५ मील की दूरी पर ही है। संस्कृत का लवण शब्द हिन्दी में नमक, नोन और नून ही बना है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी लवण का नून असंगत प्रतीत नहीं होता। इस स्थान से नरवर की दूरी लगभग २५ मील है। मालती माधव में नदियों के जिस संगम और नैकट्य का स्पष्टीकरण मिलता है वह नरवर न हो कर वर्तमान पवाया ही होगा। इस प्रकार श्री कनिंघम सत्य के अति निकट पहुँच गये थे। यद्यपि 'मालती माधव' कोई ऐतिहासिक ग्रंथ नहीं है किन्तु अन्य प्राप्त सामग्री के संदर्भ में इस साक्ष्य को ठुकराया नहीं जा सकता। साथ ही उत्खनन के परिणामस्वरूप प्राप्त अवशेष भी इस तथ्य का समर्थन करते हैं।

२.४ सरस्वती कंठाभरण में पद्मावती

पारा और सिन्धु नदियों के विषय में एक उल्लेख परमार-शासक भोज कृत 'सरस्वती कंठाभरण' नामक ग्रंथ में भी मिलता है।[१] यह कृति ई० ११वीं शताब्दी की है। इसमें पारा नदी के तट पर किसी विहार का उल्लेख किया गया है। साथ ही नागराज का कोई वन भी होना चाहिये जिसका नाम इस ग्रंथ में 'फणिपतिवन' किया गया है। इसमें किसी पहाड़ी का भी उल्लेख मिलता है। यद्यपि इस उल्लेख से पद्मावती की स्थिति स्पष्ट नहीं होती। किन्तु अन्य साक्ष्यों के साथ तालमेल बैठाने पर इस बात का निश्चय हो पाता है कि सरस्वती कंठाभरण का यह संकेत निश्चित रूप से पद्मावती की ओर है। पहाड़ी, विहार और वन सब मिल कर पद्मावती के निकटस्थ स्थल का स्पष्टीकरण करते हैं।

---

१. पुरः पारा अपारा तटभवि विहारः पूरवरं
ततः सिन्धुः सिन्धुः फणिपतिवनं पावनमतः।
तदग्रे तूदग्रो गिरिरिति गिरिस्तस्य पुरतो
विशाला शालाभिर्ललित ललनाभिर्विजयतो॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२.५ खजुराहो का शिलालेख

पद्मावती के सम्बन्ध में खजुराहो में प्राप्त शिलालेख विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यह लेख ई० सन् १००० के आस-पास का है। शिलालेख का पाठ इस प्रकार है—"पृथ्वी तल पर एक अनुपम (नगर) था जो ऊँचे-ऊँचे भवनों से शोभित था और जिसके सम्बन्ध में यह लिखा मिलता है कि उसकी स्थापना पृथ्वी के किसी ऐसे शासक और नरेन्द्र के द्वारा स्वर्ण और रजत युगों के बीच में हुई थी जो पद्म वंश का था। (इस नगर का) इतिहासों में उल्लेख है (और) पुराणों के ज्ञात लोग इसे पद्मावती कहते हैं। पद्मावती नाम की इस परम सुंदर (नगरी) की रचना एक अभूतपूर्व रूप से हुई थी। इसमें बहुत बड़े-बड़े और ऊँचे-ऊँचे भवनों की पंक्तियाँ थीं, इसके राजमार्गों में बड़े-बड़े घोड़े दौड़ते थे। इसकी दीवारें कांतियुक्त, स्वच्छ, शुभ्र और गगनचुम्बी थीं। वे आकाश से बातें करती थीं और इसमें ऐसे स्वच्छ भवन थे जो तुषारमंडित पर्वत की चोटियों के समान जान पड़ते थे।"[१]

इस शिलालेख में पद्मावती के एक अनुपम नगर होने का उल्लेख किया गया है, जिसका आधार तत्कालीन स्थापत्यकला की उन्नति को माना गया है। इस नगर के इतिहासों में उल्लेख होने की बात भी उठाई गई है किन्तु आज यह ऐतिहासिक विवरण उपलब्ध नहीं। हाँ, पुराणों में इसका उल्लेख मिलता है, इस सम्बन्ध में ऊपर संकेत किया जा चुका है। इस नगर में ऊँचे भवन तो थे ही, किन्तु उससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात थी इस नगर की आवास व्यवस्था। ऊँचे-ऊँचे भवनों की पंक्तियाँ और लम्बे-चौड़े राजमार्ग इस नगर की प्रमुख विशेषता थी। लम्बे-चौड़े राजमार्ग वाली बात संभवतः इस तथ्य पर भी प्रकाश डालती है कि यह नगर यातायात के एक मुख्य मार्ग पर स्थित था। स्वास्थ्य विज्ञान की दृष्टि से सुन्दर और स्वच्छ भवन तथा ऊँची-ऊँची दीवारें कितनी महत्वपूर्ण होती हैं, यह बात चाहे आज सर्वविदित न हो, किन्तु पद्मावती के शासकों के लिये यह ज्ञान व्यावहारिक रूप ले चुका था। इतना ही नहीं ये बातें तत्कालीन शासकों एवं कलाकारों के जीवन और समाज के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण की परिचायक हैं।

●

---

१. आसीद प्रतिमा विमान भवनैराभूषिता भूतले
लोकानामभियेन भूमिपतिना पद्मोत्थ वंशेन या।
केनापीह निवेशिता कृतयुगत्रेतांतरे श्रूयते
सच्छास्त्रे पठिता पुराण पटुभिः पद्मावती प्रोच्यते।
खजुराहो के शिलालेख—इ० १
प्रथम खण्ड—पृष्ठ १४६

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अध्याय तीन

पद्मावती की संस्थापना

पद्मावती के सम्बन्ध में अभी इस प्रकार के निर्णायक साक्ष्य उपलब्ध नहीं हो पाये हैं जिनसे निस्संदेह रूप से कहा जा सके कि इसका संस्थापक अमुक राजा रहा होगा। जो कुछ अनुमान लगाये जा सके हैं उनका आधार प्रधान रूप से तो वे सिक्के हैं जो प्राचीन शासकों का उल्लेख करते हैं। डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल ने एक ऐसे ही सिक्के का उल्लेख किया है जिस पर ३४वाँ वर्ष अंकित है। यह सिक्का वीरसेन का है जिसे पद्मावती का संस्थापक बताया जाता है। वीरसेन को न केवल पद्मावती राज्य का अपितु भार शिवों के मथुरा राज्य का भी संस्थापक माना गया है। इसके साथ ही वीरसेन के एक शिलालेख का भी उल्लेख किया गया है, जो सर रिचर्ड बर्न को जानखट नामक गाँव में मिला था। किन्तु राजाओं की गणना में नवनाग नामक राजा की भी गणना की जाती रही। 'नवनाग' के नौ राजाओं वाली बात तो अब प्रसिद्ध हो चुकी है। यदि नवनाग राजा का नाम नहीं था, तो इस बात की पूरी-पूरी संभावना है कि एक बार सत्ता खोने के पश्चात् पुनः सत्ता प्राप्त करने के कारण नवनाग कहलाये। ये नाग विदिशा के नागों से भिन्नता दर्शाने के लिए अपने नाम के साथ 'नवनाग' शब्द का प्रयोग करने लगे हों। वैसे यदि वीरसेन को ही पद्मावती का संस्थापक माना जाय, तो उसका समय लगभग १४० ई० से १७० ई० तक का ठहरता है।

३.२ वीरसेन का शिलालेख

सर रिचर्ड बर्न को जानखट नामक गाँव में वीरसेन का एक शिलालेख मिला था। जानखट गाँव फ़रुखाबाद जिले की तिरुवा तहसील के अन्तर्गत आता है। इस शिलालेख का सर्वप्रथम उल्लेख श्री पार्जिटर द्वारा सम्पादित एपीग्राफ़िया इण्डिका, खण्ड ११, पृष्ठ ८५ के लेख में किया गया है। आश्चर्य की बात तो यह है कि यह लेख पत्थर की बनी हुई एक पशु की मूर्ति के सिर और मुँह पर खुदा है। इसके साथ ही एक बात और भी विचारणीय है कि वीरसेन के सिक्के का चिह्न और जानखट के इस शिलालेख के चिह्न एक जैसे हैं। वृक्ष का आकार एक जैसा है नागों का प्रसिद्ध ताड़वृक्ष। इस वृक्ष के आस-पास कुछ और भी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चिह्न हैं, जो सिक्कों के चिह्नों से मेल खाते हैं। यह शिलालेख वीरसेन के राज्य काल के तेरहवें वर्ष का है।[१] किन्तु इस शिलालेख की स्थापना क्यों की गई थी, इसका समुचित उत्तर नहीं मिलता। एक कारण यह भी है कि अधिक टूटा-फूटा होने के कारण उसकी स्थापना का प्रयोजन दृष्टिगोचर नहीं हो पाता।

इस पर ग्रीष्म ऋतु के चौथे पक्ष की आठवीं तिथि अंकित होने का अनुमान लगाया जाता है।

वीरसेन के इस शिलालेख में पाये जाने वाले अक्षरों की बनावट हुविष्क और वासुदेव के उन शिलालेखों के अक्षरों के समान है, जो डॉ० बुहलर द्वारा प्रकाशित एपीग्राफिया इण्डिका के प्रथम और द्वितीय खण्ड में दिये गये हैं। वैसे अहिच्छत्र वाले सिक्के पर भी इसी प्रकार के अक्षर मिलते हैं। एपीग्राफिया इण्डिका के द्वितीय खण्ड के पृष्ठ २०५ की सामने वाली प्लेट पर कुषाण संवत् ९० का एक चित्र दिया गया है। इस शिलालेख के स, क और न अक्षरों की खड़ी पाई वाली लकीरों का ऊपरी भाग अपेक्षाकृत मोटा है। वीरसेन के शिलालेख के भी इन अक्षरों में वैसी ही मोटाई मिलती है। स्वरों में 'इ' की रचना दोनों शिलालेखों में समान है। स्वरों की मात्राएँ भी लगभग वैसी ही हैं जैसी कुषाण संवत् ४ के मथुरा वाले शिलालेख नं० ११ की तीसरी पंक्ति के सह, दासेन एवं दानम् शब्दों में, संवत् १८ के शिलालेख नं० १३ की तीसरी पंक्ति में तथा दूसरी पंक्ति के 'गणातो' शब्द में तथा दूसरे शब्दों में आये हुये 'तौ' में मिलती है। कुषाण संवत् ९८ के 'क्षुणे गणातो' में भी 'तौ' उसी प्रकार का है।

जानखट वाले शिलालेख में कुछ चिह्न ऐसे हैं जिनसे यह अनुमान लगाया जाता है कि वासुदेव के समय के शिलालेख अपेक्षाकृत बाद के हैं। इसी आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि वीरसेन वासुदेव कुषाण से पूर्व का होना चाहिये।

३.३ पद्मावती का वनस्पर

पद्मावती में प्रधान रूप से नवनागों का राज्य रहा था, किन्तु उनके शासन से पूर्व भी एक शासक वहाँ शासन कर चुका था। पुराणों में इसका नाम वनस्पर दिया गया है। पुराणों में इस शब्द की कई विकृतियाँ हैं यथा विश्वस्फटि (क), विश्वस्फाणी और बिंब-स्फटि।[२] सारनाथ वाले शिलालेखों में बनस्फर अथवा बनस्पर का उल्लेख किया गया है (ई० आई० खण्ड ८, पृष्ठ १७३), इसमें वनस्पर को कनिष्क के शासन काल के तीसरे वर्ष में उस प्रान्त का क्षत्रप अथवा गवर्नर बताया गया है जिसमें बनारस पड़ता है। बाद में वनस्पर को क्षत्रप के पद से बड़ा महाक्षत्रप का पद मिल गया था। डॉ० जायसवाल ने वनस्पर का समय ९० ई० से १२० ई० तक का माना है।[३]

---

१. स्वामिन् वीरसेन, संवत्सरे १०, ३–अं० यु० भा० पृष्ठ ३७।
२. पारजिट कृत पुराण टैक्स्ट की पाद टिप्पणी नं० ४५।
३. अंधकारयुगीन भारत, पृष्ठ ७६।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इतिहास लेखक गिबन ने हूणों की विशेषताएँ बताते हुए लिखा है कि इन लोगों के चेहरों पर प्रायः दाढ़ियाँ नहीं होती थीं। इस कारण इन लोगों को न तो युवावस्था में कभी भी पुरुषोचित शोभा प्राप्त होती थी और न वृद्धावस्था का पूज्य तथा आदरणीय रूप ही मिल पाता था। वनस्पर की आकृति की तुलना भी हूणों की आकृति से की जा सकती है। वह देखने में मंगोल सा जान पड़ता था। पुराणों में वनस्पर की वीरता की बड़ी प्रशंसा की गई है। उसने पद्मावती से बिहार तक अपने राज्य का विस्तार किया था। भागवत तथा अन्य पुराणों में पद्मावती को वनस्पर के शासन का केन्द्र बिन्दु बताया है। किन्तु उसके राज्य का विस्तार मगध तक हो गया था।

वनस्पर के वंशजों को बुन्देलखण्ड में बनाफर कहा जाता है। इनकी वीरता का वर्णन अब तक बढ़ा-चढ़ा कर किया जाता है। वे अपनी वीरता और युद्ध कौशल के लिए प्रसिद्ध थे। बनाफरों की उत्पत्ति पर विचार करने पर जाना जाता है कि ये लोग निम्न कोटि के राजपूत थे और उच्च कोटि के राजपूतों के साथ शादी सम्बन्ध करने पर इन्हें बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता था। बुन्देलखण्ड में तो एक बोली ही बनाफरी बोली के नाम से जानी जाती है। ब्रज के कुछ भाग में तो बनाफर मुहाविरे के रूप में व्यवहृत होता है तथा यह शब्द किसी व्यक्ति के नटखटपन और शैतानियत से भरे स्वरूप की ओर संकेत करता है। उदाहरणार्थ—'वह बड़ा बनाफर है'—का अर्थ होगा—वह बड़ा नटखट और शैतान है। बनाफर के इस अर्थ का विकास सम्भवतः वनस्पर की भीषण मारकाट के कारण हो गया होगा। वनस्पर ने अपनी प्रजा में से ब्राह्मणों का बिल्कुल नाश ही कर दिया था। उसके अत्याचार तो उच्च वर्ग के हिन्दुओं पर भी बहुत हुए थे। बताया जाता है कि उसने निम्न कोटि के लोगों तथा विदेशियों को अपने राज्य में उच्च पद दिये थे। भारत में कुषाणों की नीति को निर्धारित करने वाला यह वनस्पर ही समझा जाता है। यह ऐसी नीति थी जिनमें अन्य धर्मावलम्बियों का शोषण किया जाता था तथा राजनैतिक उद्देश्य की सिद्धि के लिए उन पर अनेकानेक अत्याचार किये जाते थे। धन देकर बाहर से लोगों को बुलाने का कार्य भी उसकी नीति के अन्तर्गत था।

पद्मावती एवं विदिशा उस समय भारत की राष्ट्रीयता के नवोन्मेष के प्रधान केन्द्र समझे जाते थे, किन्तु वनस्पर इन भावनाओं के उन्मूलन पर तुला हुआ था। उसने राष्ट्रीय भावनाओं को प्रोत्साहित करने वाले ब्राह्मणों का तो विनाश किया ही साथ ही ऐसे क्षत्रियों को, जो शकों को हेय दृष्टि से देखते थे नष्ट कर दिया गया। ये वनस्पर दूसरे धर्म के लोगों को निश्चय ही बड़ा कष्ट देते थे। इसने कैवर्तों (जिन्हें अब केवट कहा जाता है) और पंचकों का (जिन्हें शूद्रों से भी हेय समझा जाता है) एक ऐसा वर्ग तैयार किया था, जो शासन के क्षेत्र में सहायता किया करता था। स्पष्ट है, ये दोनों ही जातियाँ निम्न कोटि की थीं जिन्हें समाज में कोई सम्मानपूर्ण स्थान नहीं मिला था, जिनमें समाज के प्रति आक्रोश भरा हुआ था। उसने शक पुलिंदों को भी बाहर से बुलाया था। इस प्रकार जहाँ तक बन सका इसने अपनी सुरक्षा तथा शक्ति सन्तुलन के लिये बाहर के लोगों को बुलाया था। ये लोग भी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ब्राह्मण विरोधी थे।[१] कुषाणों की धार्मिक एवं सामाजिक नीति का वर्णन हम आगे कर रहे हैं। यहाँ इतना उल्लेख कर देना आवश्यक है कि ब्राह्मणों की वर्ण-व्यवस्था के झंझट के कारण ये म्लेच्छ अत्यन्त उपेक्षा और घृणा की दृष्टि से देखे जाते थे; जिससे इन्हें बड़ा बुरा लगता था। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप इन्होंने ऐसे अनेक प्रयत्न किये जिससे कि भारत की सामाजिक व्यवस्था ही गड़बड़ा जाये। सुनते हैं, काश्मीर में तो इसके विरुद्ध एक बड़ा भारी आन्दोलन भी खड़ा हो गया था, वहाँ के राजा गोनर्द तृतीय ने उस नाग उपासना को फिर से प्रचलित किया था जिसे कुषाण शासन ने नष्ट कर डाला था। किन्तु कुषाणों के इस दमनकारी चक्र को समाप्त करके शासन और समाज के छिन्न-भिन्न रूप को फिर से संगठित करने तथा पद्मावती को एक सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में पुनर्स्थापित करने का एकमात्र श्रेय भारशिव राजाओं को ही दिया जा सकता है, जिन्होंने पद्मावती में शासन किया था तथा बाह्य शक्तियों के शोषण का उन्मूलन करके समाज को अभयदान प्रदान किया।

वनस्पर के पश्चात् उत्तरी भारत में शकों का प्रभुत्व नष्ट-प्राय हो चला था। वैसे तो मालव के संगठित राष्ट्र-प्रेमियों ने भी शकों को निष्कासित करने का कार्य प्रारम्भ कर दिया था, जिसका एकमात्र कारण यही था कि इन्हें विदेशी समझा जाता था। इस सम्बन्ध में उन्होंने दक्षिण महाराष्ट्र के तत्कालीन सातवाहन शासकों से सहायता ली थी और प्रारम्भिक सफलता स्वरूप उज्जयिनी के शकों को परास्त कर दिया गया। शकों की यह पराजय उनकी शक्ति पर गहरे प्रहार के रूप में सिद्ध हुई और उनका तत्काल प्रभाव यह हुआ कि कुछ समय के लिए उत्तर भारत पर उनका राजनैतिक प्रभुत्व ही समाप्त हो गया।[२]

३.४ कुषाण शासन और पद्मावती

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है वनस्पर ने ब्राह्मणों का विनाश करने के अनेक प्रयत्न किये। इसके साथ ही उसने उच्च वर्गीय क्षत्रियों का भी उन्मूलन किया। यहाँ तक कि हिन्दुओं के अनेक स्मृति-चिह्नों को मिटाने में उसका प्रधान हाथ रहा। एक स्थान पर इस बात का उल्लेख मिलता है कि पवित्र अग्नि के जितने मन्दिर थे वे एक आरम्भिक कुषाण ने नष्ट कर डाले थे और उनके स्थान पर बौद्ध मन्दिर बनवाये गये थे। एक कुषाण

---

१. पारजिटरकृत पुराण टैक्स्ट की पृष्ठ ५२ की पाद टिप्पणी ४८ उल्लेखनीय है। विष्णु पुराण में कहा है—कैवर्त यदु (यदु) पुलिंग अब्राह्माणानाम् (न्यान्) राज्ये स्थापयिस्यथि उत्साद्येखिल क्षत्र-जाति।

भागवत में कहा है—करिष्यति अपरान् वर्णान् पुलिंद-यदु, मद्रकान्। प्रजाश्च अब्रह्म भुयिष्ठाः स्थापयिष्यति दुर्मतिः॥

वायु पुराण में कहा है—उत्साद्य पार्थिवान् सर्वान् सो अन्यान् वर्णान करिष्यति कैवर्त्तान् पंचकांश्चैव पुलिंदान् अब्रह्मणानांस्तथा॥ दूसरा पाठ—कैवर्त्तयासाम सकांश्चैव पुलिंदान्। और कैवर्त्तान् य पुमांश्चैव आदि। अ० यु० भा० पृष्ठ ७८।

२. मथुरा, श्री कृष्णदत्त वाजपेयी, पृष्ठ १८।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्षत्रप का ऐसा लेख भी मिला है जिसकी नीति ही यह थी कि ब्राह्मणों और सनातनी जातियों का जहाँ तक हो सके दमन किया जाय। बताया जाता है कि अपनी प्रजा को ब्राह्मणहीन बनाना उनकी धार्मिक और सामाजिक नीति का एक अंग बन गया। अलबरूनी ने एक ऐसे शक शासन की विशेषता का उल्लेख किया है, जिसका शासन ईसवी सन् ७८ के आस-पास भारत में प्रचलित था। डॉ० जायसवाल ने इसका निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया है :—

"यहाँ जिस शक का उल्लेख है, उसने आर्यावर्त में अपने राज्य के मध्य में अपनी राजधानी बना कर सिन्धु से समुद्र तक के प्रदेश पर अत्याचार किया था। अपने हिन्दुओं को आज्ञा दे दी थी कि वे अपने आपको शक ही समझें और शक ही कहें, इसके अतिरिक्त अपने आपको और कुछ न समझें या न कहें।" (२,६)

गर्ग संहिता में कुछ इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये गये हैं। अन्धकारयुगीन भारत में दिया गया उद्धरण इस प्रकार है :—

"शकों का राजा बहुत ही लोभी, शक्तिशाली और पापी था।.....इन भीषण और असंख्य शकों ने प्रजा का स्वरूप नष्ट कर दिया था और उनके आचरण भ्रष्ट कर दिये थे।" (पृष्ठ ८४)

कथा सरित्सागर में गुणाढ्य ने भी म्लेच्छों के अधार्मिक कृत्यों का उल्लेख किया है :—

"ये म्लेच्छ लोग ब्राह्मणों की हत्या करते हैं और उनके यज्ञों तथा धार्मिक कृत्यों में बाधा डालते हैं। ये आश्रमों की कन्याओं को उठा ले जाते हैं। भला ऐसा कौन सा अपराध है जो ये दुष्ट नहीं करते ?" (कथा सरित्सागर १८)

इस प्रकार यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि कुषाणों ने हिन्दुओं की सामाजिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने के लिए अनेक प्रयत्न किये। स्पष्ट है, वनस्पर ने भी अपने पद्मावती के शासन के समय अनेक अत्याचार किये होंगे। इन अत्याचारों के कारण ही 'बनाफर' शब्द दुष्ट और दुराचारी अर्थ के लिए रूढ़ हो गया। किन्तु इसमें संदेह नहीं कि ई० दूसरी सदी का अन्त होते-होते मथुरा और पद्मावती प्रभृति प्रदेशों से कुषाण सत्ता उखड़ गई थी। मध्यप्रदेश तथा पूर्वी पंजाब से कुषाणों को हटाने में कई शक्तियों का हाथ था। पद्मावती, कान्तिपुरी तथा मथुरा से तो नागवंशी राजाओं ने कुषाणों को भगाने में पूरी पूरी शक्ति लगा दी थी। कौशांबी तथा विंध्य-प्रदेश से मघ राजाओं की सहायता से एवं मध्यप्रदेश से मालवों, यौधेयों एवं कुणिंदों के द्वारा राजस्थान और पंजाब से कुषाणों को भगाया गया।

३.५ पद्मावती के नवनाग

शिवनंदी मुख्य शुंग शाखा के राजाओं के बाद हुआ। किन्तु इसमें संदेह नहीं कि शिवनंदी विदिशा का अन्तिम नाग राजा हुआ और उसके पश्चात विदिशा पर शुंगों का आधिपत्य हो गया था। विदिशा पर आधिपत्य जमाने वालों में क्रमशः शक, मालव, सात-

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वाहन, कुषाण और क्षहरात आते हैं। इसी बीच जब नागों को विदिशा का परित्याग करना पड़ा, तो उन्होंने पद्मावती पर स्वतन्त्र शासक के रूप में अथवा मांडलिकों के रूप में अधिकार जमा लिया था। पद्मावती उनके शासन का प्रधान केन्द्र बन गई थी। यह प्राचीन समय का अपने ढंग का एक केन्द्रीय सत्ता प्रधान राज्य था। समस्त विन्ध्य अंचल में वे गणों के रूप में शक्तिशाली बने रहे तथा पद्मावती उन गणों का एक केन्द्र बन गई।

विदिशा से चले जाने के पश्चात नाग राजाओं ने अपने वंश के द्योतन के लिए केवल 'नाग' शब्द को पर्याप्त न समझा होगा। फिर नाग तो शुंगों से पराजित हो चुके थे, जिससे उनकी प्रतिष्ठा को ठेस लगी थी, अतएव पद्मावती में आकर ये नाग 'नवनाग' बन गये। तब इन्होंने पर्याप्त शक्ति अर्जित कर ली थी और केन्द्रीय सत्ता समर्थित गणराज्यों का संचालन करने लगे थे। पद्मावती को इन गणों का प्रमुख केन्द्र बनने का गौरव मिल गया था। पद्मावती में टकसाल थी और उनके सिक्के लाखों की संख्या में मिलते हैं जिनके आधार पर यह सहज ही कहा जा सकता है कि ये शासक बड़े योग्य और धनधान्य से सम्पन्न थे। इनकी सम्पन्नता का एक कारण यह भी था कि पद्मावती मुख्य मार्ग पर स्थित होने के कारण व्यापार का भी बड़ा भारी केन्द्र था। पुराणों में उनके विषय में बहुत अधिक सामग्री बिखरी पड़ी है। गणपति नाग के विषय में समुद्रगुप्त के इलाहाबाद वाले स्तम्भ से प्रचुर सामग्री प्राप्त हो जाती है। उनके विषय में सामग्री प्राप्त करने का एक अन्य स्रोत वाकाटकों का शिलालेख भी है, जिसके आधार पर यह निश्चित किया जाता है कि भवनाग की राजकुमारी का विवाह प्रवरसेन के राजकुमार गौतमी पुत्र के साथ हुआ था। पद्मावती पर जिन नागों ने राज्य किया उनमें से कई राजाओं की मूर्तियाँ विदिशा एवं पद्मावती में प्राप्त होती हैं। अन्य सिक्कों के अतिरिक्त डॉ० हरिहर त्रिवेदी ने एक ऐसे सिक्के का भी उल्लेख किया है जिस पर दुबारा नाम तथा लांछन ठोका गया है। इस सिक्के पर उन्होंने 'महत' या 'मपत' पढ़ा है। इसके विषय में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। 'महत' या 'मपत' नाम भाषा की दृष्टि से भारतीय तो लगता नहीं। क्योंकि किसी अर्थ से इसका सम्बन्ध नहीं जुड़ता है। सम्भावना इस बात की रह जाती है कि यह कुषाण सिक्का हो। इस सिक्के का आकार एवं तौल विभुनाग के सिक्कों से मिलता-जुलता है। विभुनाग के अपेक्षाकृत कम सिक्के प्राप्त हुए हैं, इससे ऐसा लगता है कि कुषाणों ने विभुनाग को जीत कर पद्मावती पर भी अपना आधिपत्य जमा लिया हो और विभुनाग के सिक्कों पर भी स्वयं का लांछन ठोक दिया हो। श्री हरिहर निवास द्विवेदी ने इस घटना का कार्यकाल ईसवी सन् ८० और ९० ई० के बीच निर्धारित किया है। विभुनाग के राज्यकाल की समाप्ति ८० और ९० ई० सन् के आस-पास ही हो गई होगी। डॉ० जायसवाल ने प्रवरसेन वाकाटक का राज्यकाल ई० सन् २८४ से ३४४ तक माना है। डॉ० अल्तेकर ने इसे २७५ से ३३५ तक माना है। भवनाग की राजकुमारी का विवाह ई० सन् २८० के लगभग हुआ होगा। पद्मावती के एक अन्य राजा के विषय में भी समय का अनुमान लगाया गया है। इसका उल्लेख समुद्रगुप्त के शिलालेख में मिलता है।

भवनाग को भारशिव राजाओं में अन्तिम समझा जाता है। इन राजाओं के विषय

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

में प्रचुर सामग्री नहीं मिलती, जिसके आधार पर उनके विषय में विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जा सके। प्रस्तुत साक्ष्य और नागकालीन सिक्कों पर विचार करने के पश्चात डॉ० जायसवाल ने नवनाग और वीरसेन के मध्य चार राजाओं का उल्लेख किया है। पहला हयनाग जिसने तीस वर्ष या इससे कुछ अधिक समय तक राज्य किया, दूसरा चरजनाग जिसका शासन-काल भी तीस वर्ष अथवा इससे कुछ अधिक रहा, तीसरा बहिननाग जिसका शासन-काल तीस वर्ष तक रहा और चौथा त्रयनाग जिसके शासन काल की अवधि अभी तक ज्ञात नहीं हो सकी है। हयनाग के सिक्कों की लिपि को सबसे अधिक प्राचीन बताया गया है। उसके सिक्कों की लिपि वीरसेन के सिक्कों की लिपि से मेल खाती है। इस आधार पर हयनाग के शासन का समय २१० ई० के आस-पास ठहरता है। इन राजाओं के सिक्कों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन पर समय भी दिया हुआ है और ताड़ का वृक्ष भी अंकित है। वीरसेन के शिलालेख में जो वृक्ष का चिह्न है वह भी इससे मिलता-जुलता है। भवनाग को तो प्रवरसेन का समकालीन ही बताया गया है।

नवनागों के समय का निर्धारण भवनाग के समय के आधार पर किया जा सकता है। भवनाग का समय ३०० ई० निर्धारित होता है। यदि गणपति नाग के समय के अनुसार चलें तो गणपति नाग, भवनाग और विभुनाग का समय क्रमशः इस प्रकार दर्शाया जा सकता है :—

१—गणपतिनाग—ई० सन् ३४४-४५ तक विद्यमान रहा होगा।

२—भवनाग—ई० सन् २९० के लगभग रहा होगा।

३—विभुनाग—ई० सन् ८०-९०।

नागों के सिक्कों पर वृष, व्याघ्र और भीम के चिह्न कम मिलते हैं, तथा जो मिलते भी हैं वे अत्यन्त घिसे हुए हैं। इससे यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि वे शासक जिनके सिक्कों पर ये चिह्न हैं वे पूर्वकालीन होने चाहिये। विभु, देव तथा प्रभाकर के सिक्कों को तौल तथा आकार में एक जैसा बताया गया है। कुछ ऐसे सिक्के मिले जिन पर 'क' नाग तथा 'ख' नाग पढ़ा गया है। इन सभी को बसुनाग के सिक्के होना निश्चित किया गया है। डॉ० हरिहर त्रिवेदी ने एक सिक्के को श्रीप्रभ नामक किसी राजा का माना है। लगता है वह सिक्का प्रभाकर अथवा पुंनाग का होना चाहिये। सिक्कों के आधार पर बसु और स्कंद नाग के समय को भी पास-पास का होना चाहिये, क्योंकि दोनों के सिक्कों पर एक समान लक्षण मिलते हैं। दोनों सिक्कों में दो रेखाएँ बनी हुई हैं। ये रेखाएँ किसी शस्त्र का ही प्रतीक हो सकती हैं। शस्त्र सम्भवतः वज्र होगा।

३.६ भारशिव

जैसा कि नाम से ही प्रगट होता है भारशिव राजा शिव के भक्त थे। वे शिव को धारण करते थे। शिव उनके इष्टदेव तो थे ही, राजदेव भी थे। उनका राज्य हिन्दू सभ्यता और संस्कृति का राज्य था। इन्होंने हिंदू साम्राज्य की रचना और उसके गठन में पूरा-पूरा सहयोग दिया। भारशिवों के अवशेषों से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इन राजाओं को

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धर्म में अटूट श्रद्धा थी और वे एक से अधिक देवताओं की उपासना करते थे। उनके अभिलेखों में 'शिवलिंगोद्वहन' शब्द प्राप्त होता है। शिव के उपासक होने का इससे अधिक ठोस प्रमाण और क्या हो सकता है।

पुराणों ने भी भारशिव-वंश की राज्य-स्थापना के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट किये हैं। कुषाणों के शासन को समाप्त करने के बाद एक भारशिव राजा गंगा के पवित्र जल से अभिषिक्त होकर हिंदू सम्राट के पद पर प्रतिष्ठित हुआ होगा। इस सम्बन्ध में डॉ० जायसवाल का कथन है कि भारशिव राजा सौ वर्ष के कुषाण शासन के उपरान्त ही अभिषिक्त हुआ होगा। अभिषिक्त होने के सम्बन्ध में पुराणों का उल्लेख महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। यह कथन है, 'नैव मूर्धाभिषिक्तास्ते'। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पुराण मूर्धाभिषिक्त राजा का उल्लेख अवश्य करेंगे। इसका अर्थ यह होगा कि जो राजा मूर्धाभिषिक्त नहीं होगा, वह राजसिंहासन पर आरूढ़ मूर्धाभिषिक्त राजाओं की सूची में उल्लिखित नहीं होगा। ऐसे कई राजा हुये जिन्होंने आर्यों की पवित्र भूमि में दस-दस अश्वमेध यज्ञ किये। जिस राजा ने ये अश्वमेध नहीं किये उसका नाम सूची में नहीं दिखाया गया। पुराणों ने तो ऐसे शुंग राजाओं का भी उल्लेख किया है जिन्होंने अश्वमेध यज्ञ किये थे। शुंगों ने दो अश्वमेध यज्ञ किये और सातवाहनों ने भी दो अश्वमेध यज्ञ किये थे। इससे इस बात की पुष्टि हो जाती है कि भारशिव वंश की जड़ें धर्म द्वारा सिंचित थीं, उनका राज्य एक ऐसा राज्य था जिसकी आधारशिला धर्म थी।

३.७ भारशिव वंश की स्थापना एवं शाखाएँ

सिक्कों के आधार पर भारशिव वंश के संस्थापक और पद्मावती तथा मथुरा शाखाओं का उल्लेख संक्षेप में इस प्रकार है :—

नवनाग : इसका समय लगभग १४० ई० से १७० तक निर्धारित होता है। इसके सिक्के मिले है। नवनाग ने २७ वर्ष या इससे कुछ अधिक समय तक शासन किया। इसके सिक्के पर २७ वाँ वर्ष लिखा हुआ है। इसे भारशिव का संस्थापक माना गया है। कालांतर में नवनाग वंश नाम के रूप में अपना लिया गया।

वीरसेन : लगभग १७० ई० से २१० ई० तक का समय माना जाता है। वीरसेन के सिक्के तो मिलते ही हैं, इसके साथ ही शिलालेखों पर भी वीरसेन का नाम मिलता है। बताया जाता है कि इसने ३४ वर्ष से अधिक समय तक शासन किया। इसे भारशिव की मथुरा और पद्मावती की शाखाओं का संस्थापक समझा जाता है।

भारशिवों की कांतिपुरी वाली शाखा में विशेषकर चार नाम उल्लेखनीय हैं :—

हयनाग—सिक्कों पर हयनाग का नाम आता है। हयनाग का समय सन् २१० से २४५ तक का निश्चित किया गया है। इसके शासन का समय ३० वर्ष से अधिक माना गया है।

त्रयनाग : त्रयनाग का समय २४५ से २५० ई० तक का निर्धारित किया गया है। त्रयनाग के भी सिक्के मिलते हैं। इसका शासन अल्पकालिक रहा।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बर्हिननाग : सिक्कों पर बर्हिननाग का नाम भी मिला है इसका शासन काल लगभग २५० ई० से २६० ई० तक अर्थात् १० वर्ष अथवा इससे कम होगा।

चरजनाग : चरजनाग ने अपेक्षाकृत अधिक समय तक शासन किया बताया जाता है। ई० सन् लगभग २६० से २९० तक का शासन चरजनाग का रहा। चरजनाग के सिक्के प्राप्त हैं। इसका शासनकाल ३० वर्ष के लगभग रहा।

३.८ पद्मावती शाखा

पद्मावती में जो नाग शासक हुए, जिनकी जानकारी सिक्कों के द्वारा भी समर्थित होती है, उनकी सूची सिक्कों पर अंकित लांछन और विरुद सहित इस प्रकार है :—

क्रम	नाम	लांछन	विरुद
१.	वृषनाग	सम्मुखनंदी	महाराज श्री वृषनाग
२.	व्याघ्र	चक्र	महाराज श्री व्याघ्र
३.	विभु	वामनंदी	
		अंकुश	
		परशु	
		आठ आरेदार चक्र	महाराज श्री विभुनागस्य
४.	वसु	मयूर	श्री बसुनागस्य
	ख नाग	दक्षिणनंदी	वसु नागेन्द्र
	ब नाग		महाराज बसुनाग
५.	वीरसेन	वा० नंदी	महाराज श्री वीरसेनस्य
		त्रिशूल	
		परशु	
६.	स्कन्द	मयूर	महाराज
		द० नंदी	
		वा० नंदी	
		अश्व	
७.	भीमनाग	मयूर	महाराज श्री
		नंदी	
८.	बृहस्पति	द० नंदी	
		वा० नंदी	महाराज बृहस्पति नाग
		त्रिशूल	
		परशु	
		मयूर	
		चक्र	

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्रम	नाम	लांछन	विरुद
९.	देव देवेन्द्र	चक्र	श्री देवनागस्य
१०.	प्रभाकर (पुंनाग)	द० नंदी, वा० नंदी, द० सिंह, वा० सिंह, परशु,	
११.	रविनाग	नंदी	अधिराज या महाराज
१२.	भवनाग	त्रिशूल, वा० नंदी, द० नंदी, वृत्त परिक्रमा में अर्द्धचन्द्र वृत्त सहित चन्द्र	 महाराज अधिराज श्री
१३[१].	गणपति गणेन्द्र या गणेन्द्र	वा० नंदी वा० सिंह परिक्रमा के भीतर वृक्ष	 महाराज श्री

१. पद्मावती के नागों को नवनाग कहा गया है। ऊपर नागों की संख्या १३ गिनाई गई है। नव का एक अन्य अर्थ नौ भी है। किन्तु पुराणों में नागों अथवा गुप्त राजाओं की कोई संख्या नहीं दी है। अतएव पुराणों के 'नवनागाः पद्मावत्याम कांतिपुर्याम् मथुरायाम। अनुगंगा प्रयाग मागधा गुप्ताश्च भोक्ष्यंति' में गुप्तों के साथ मागधी विशेषण के रूप में आया है। इसी प्रकार नागों के साथ नव का प्रयोग विशेषण स्वरूप है। नव के अर्थ की दो संभावनायें रह जाती हैं : (१) पहली संभावना तो यह है कि विदिशा के नागों से भेद करने के लिये 'नये अथवा परवर्ती' नागों के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग हुआ। शुंगों के पश्चात् ये विदिशा के नाग नवनाग बन गये थे। (२) एक दूसरी सम्भावना यह भी है कि यह नव किसी वंश विशेष का द्योतक हो जिसमें नवनाग नामक शासक भी रह चुका था। नागों का किसी वंश का नाम नव हो तो नव वंशीय नाग हो गये, अथवा यदि नव किसी राजा का नाम होगा तो नव राजा के वंश के नागों को भी नवनाग कहा जा सकता है। पुराणों में इसका कुछ भी स्पष्टीकरण नहीं मिलता है। प्रथम संभावना ही अधिक स्वाभाविक प्रतीत होती है जिसके पीछे इतिहास भी है। नव का अर्थ 'नवीन' 'परवर्ती' करना ही अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है डॉ० जायसवाल के मतानुसार पुराणों में भारशिवों को नवनाग कहा गया है। भूतनन्दी के समय से नाग वंश के राजाओं के नाम के आगे नन्दी शब्द जुड़ने लग गया था। नन्दी शिव के वाहन वृष का प्रतीकात्मक शब्द है। भागवत में भी नवनागों का उल्लेख मिलता है। किन्तु उसमें भूतनन्दी से लेकर प्रवीरक तक के शासक ही वर्णित हैं। यदि भागवत के उल्लेख को सही माना जाय तो नवनागों का अंतर्भाव प्रवीरक के शासन में ही हो जाता है। किन्तु विष्णु पुराण में 'नवनागाः पद्मवत्यां कांतिपुर्यां मथुरायां' का उल्लेख मिलता है। इससे दो निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। पहला यह कि एक ही समय में नवनागों की तीन शाखाओं ने तीन स्थानों पर शासन किया यथा पद्मावती, कान्तिपुरी और मथुरा। एक दूसरी सम्भावना यह कि नवनागों ने पहले पद्मावती पर अपना शासन किया। उसके पश्चात् उनका शासन कान्तिपुरी पर हुआ और अन्त में मथुरा को अपने शासन का केन्द्र बनाया। पद्मावती में लगता है भूतनन्दी के वंशज राजा शिवनन्दी के समय तक और उसके बाद प्रायः ५० वर्ष तक नागों की राजधानी रही होगी। उसके पश्चात् पद्मावती पर कुषाण क्षत्रपों का आधिपत्य हो गया, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

पवाया में प्राप्त स्वर्णबिन्दु नामक शिवलिंग की खोज अत्यन्त महत्वपूर्ण है। फ्लीट ने गुप्तवंशीय शिलालेखों में एक ताम्रलेख का उल्लेख किया है। इसमें भारशिव राजाओं का इतिहास अत्यन्त संक्षिप्त रूप में वर्णित है। ताम्रलेख का पाठ इस प्रकार है :—

"अंशभार सन्निवेशित शिवलिंगोद्वहन शिवसुपरितुष्ट समुत्पादितराजवंशानाम् पराक्रम अधिगत-भागीरथी-अमलजल मूर्द्धाभिषिक्तानाम् दशाश्वमेध-अवभृथस्नानाम् भारशिवानाम्।"

उपर्युक्त अभिलेख का तात्पर्य यह है कि "उन भारशिवों (के वंश) का, जिनके राजवंश का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ था कि उन्होंने शिवलिंग को अपने कंधे पर वहन करके शिव को परितुष्ट किया था—वे भारशिव जिनका राज्याभिषेक उस भागीरथी के पवित्र जल से हुआ था, जिसे उन्होंने अपने पराक्रम से प्राप्त किया था—वे भारशिव जिन्होंने दस अश्वमेध यज्ञ करके अवभृथ स्नान किया था।"

पवाया में प्राप्त शिवलिंग इस बात की पुष्टि कर देता है कि पद्मावती के शासक न केवल शिव के उपासक थे, अपितु, किसी राजा ने प्रारम्भ में शिवलिंग की स्थापना करते हुए ही पद्मावती को अपनी राजधानी बनाया था। मानवाकार नन्दी जो पवाया में मिला है, इसी तथ्य को प्रगट करता है कि शिव के उपासक शिव के वाहन नन्दी को भी अपनी इष्टपूजा का एक अंग समझते हैं।

पुराणों में एक भारशिव राजा के नाम का उल्लेख इस प्रकार हुआ है। 'भारशिवोभेके-महाराज श्री भवनाग'। इसका अर्थ है भारशिव वंश के राजाओं में एक अर्थात् महाराज श्री भवनाग। इससे न केवल भारशिव वंश की अपितु भारशिवों के नाग होने की भी पुष्टि होती है। भारशिव नाम तो शिव को धारण करने के कारण पड़ गया था।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

३.९ विरुदावली

पद्मावती के भारशिवों की सूचीमें अंकित राजाओं की मुद्रा पर जो विरुद लिखे गये हैं, उससे भी इन शासकों के सम्बन्ध में कुछ अनुमान किये जा सकते हैं। उक्त सभी राजाओं में से केवल एक राजा ही ऐसा है जिसके नाम के साथ 'अधिराजश्री' शब्द का प्रयोग मिलता है। अधिराजश्री का पर्याय होता है सम्राट्। एक अन्य विरुद 'महाराजश्री' निम्न राजाओं के नामों के सामने अंकित है—वृषनाग, व्याघ्र, विभु, वीरसेन, भीमनाग, देव, प्रभाकर एवं गणपति नाग। शेष कुछ राजाओं के नाम के सम्मुख केवल 'महाराज' शब्द ही मिलता है। स्कन्द के नाम के साथ 'महाराज' एवं 'धराज' शब्द पढ़ा गया है। रविनाग का विरुद 'अधिराज' अंकित किया गया है। श्री हरिहर निवास द्विवेदी ने अपना विश्वास प्रगट किया है कि नवनागों की मुद्राओं पर अंकित नाम उनके व्यक्तिवाचक नाम नहीं हैं। ये उनके अभिषेक के नाम हैं, जो उन्होंने अपने आराध्य और व्यक्तिगत पद के आधार पर धारण किये थे।

३.१० पद्मावती के शासक

वृषनाग

मध्य भारत के इतिहास के लेखकद्वय ने तो पुराणों और सिक्कों के आधार पर वृषनाग को ही पद्मावती का संस्थापक बताया है। पुराणों में विदिशा के नागों को वृष कहा गया है। किन्तु वृषनाग के सिक्के पद्मावती में भी मिले हैं और एक मानवाकार नन्दी भी मिला है। सम्भावना यही प्रतीत होती है कि वृष ही विदिशा से पद्मावती आया होगा। वृष की मुद्राओं पर नन्दी का चिह्न मिलता है। इस नन्दी में विशेषता यह है कि यह सम्मुख नन्दी है। अन्य सिक्कों पर अंकित नन्दी या तो दक्षिण मुख है अथवा वाममुख। वृष नाग के पद्मावती में आगमन का समय ईसवी सन् की पहली शताब्दी बताया गया है। इस प्रकार पद्मावती का इतिहास ई० की दूसरी शताब्दी से प्रारम्भ न होकर ईसा की पहली शताब्दी से ही प्रारम्भ होता है।

व्याघ्रनाग

वृष नाग के उपरान्त व्याघ्र राजा के शासनारोहण की सम्भावना अधिक प्रतीत होती है। कनिंघम ने इसे व्याघ्र ही पढ़ा था किन्तु प्लेट संख्या २, चित्र संख्या २२ में व्याघ्र-नाग लिखा मिलता है। व्याघ्र नाग था, यह तो निश्चित ही है। उसने अपने सिक्कों पर आठ आरे वाले चक्र का चिह्न अंकित किया था। इसका विरुद 'महाराज श्री व्याघ्र' अंकित है।

विभुनाग

व्याघ्र के पश्चात् विभुनाग का शासन काल आता है। इसके सिक्के पर भी आठ आरे वाला चक्र मिलता है जो व्याघ्रनाग का ही है। इसके अतिरिक्त अंकुश और परशु के

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भी चित्र मिलते हैं। डॉ० जायसवाल ने जिस व्याघ्रनाग का उल्लेख किया है उसका समय लगभग २७० से २९० ई० तक का दिया है, परन्तु सिक्कों के आधार पर व्याघ्रनाग पूर्वकालीन होना चाहिए। विभु का नन्दी वामाभिमुख है, जबकि वृषनाग ने सम्मुख नन्दी वाले चिह्न का उपयोग किया था। डॉ० हरिहर त्रिवेदी ने जिस सिक्के पर दुबारा ठोके गये लांछन को 'महत' या 'मपत' पढ़ा है वह सिक्का विभु के समय के बाद का है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि विभु के पश्चात् अर्थात् ई० सन् ८० या ९० में पद्मावती पर कुषाण शासन रहा था। वनस्फर या वनस्पर के शासन का उल्लेख पहले किया जा चुका है। इस समय लगता है विदिशा भी कुषाण शासन के अन्तर्गत आ गया था। वाषिष्क कुषाण के साँची के अभिलेख से इस बात की पुष्टि हो जाती है।

अब प्रश्न यह है कि कुषाणों के शासन-काल में पद्मावती के नाग-वंशी राजा कहाँ रहे होंगे। सम्भावना यह प्रतीत होती है, कि पद्मावती में पराजित हो कर नाग राजाओं ने कान्तिपुरी को अपना कार्य-केन्द्र बनाया होगा। पद्मावती से कान्तिपुरी की दूरी कुछ अधिक नहीं है। दूसरे यह स्थान मुख्य मार्ग से कुछ हट कर था। दूसरी सुविधा यह भी रही होगी कि इन नागों को यहाँ रह कर अपनी प्रमुख राजधानी पद्मावती में रुचि बनी रही होगी और मथुरा तथा पद्मावती की गतिविधियों पर दृष्टि बनाये रखने में सरलता रही होगी।

कान्तिपुरी किसे माना जाये, इस सम्बन्ध में विवाद बना रहा है। किन्तु अब यह प्रायः निश्चित प्रतीत होता है कि मुरैना जिले का कुतवार ही कान्तिपुरी रहा होगा। यहाँ यद्यपि उत्खनन का कार्य नहीं हुआ है, किन्तु एक ही निधि से १८००० से भी अधिक नाग मुद्राओं की प्राप्ति विशेष महत्व की बात है। सिक्कों की यह निधि इस बात का निर्णय कर सकती है, कि कान्तिपुरी (वर्तमान कुतवार) में कोई सम्पन्न राज्य कायम रहा होगा।

वसुनाग

अनुमानतः कुषाण राजा हुविष्क से नागवंशीय राजा वसु ने पद्मावती को पुनः प्राप्त कर लिया। यह घटना ई० सन् लगभग १५० की होगी। वसु के सिक्कों पर 'वसु-नागस्य' का विरुद प्राप्त होता है। किसी-किसी सिक्के पर 'ख नाग' और 'व नाग' भी मिला है। जिसके विषय में यह अनुमान लगाया जाता है, कि यह सिक्का वसुनाग का ही होना चाहिए। इसके सिक्के का चिह्न मयूर है। वसुनाग के विरुद के रूप में 'वसु नागेन्द्र' एवं 'महाराज वसुनाग' लिखा मिला है।

वीरसेन

वसु के शासन के पश्चात एक ऐसे शासक का उल्लेख मिलता है, जो और भी अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि वीरसेन ने पद्मावती के साथ-साथ मथुरा को भी वासुदेव कुषाण से प्राप्त कर लिया था। वीरसेन के सिक्के अधिकांशतः

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मथुरा में मिले हैं, किन्तु पद्मावती में भी इसके सिक्के मिले हैं। इससे यह अनुमान सही प्रतीत होता है कि मथुरा और पद्मावती दोनों ही पर इसका शासन रहा होगा। वीरसेन के सिक्कों पर वामनन्दी के चित्र मिलते हैं। त्रिशूल और परशु को भी इसने अपने चिह्न के रूप में अपनाया था। विरुद के रूप में हमें 'महाराज वीरसेनस्य' लिखा मिलता है। इसके सिक्के पर ३४वाँ वर्ष लिखा मिलता है। डॉ० जायसवाल ने इसका समय ई० सन् १७० से २१० तक का माना है। वीरसेन के सिक्कों की लिपि की तुलना डॉ० जायसवाल ने हयनाग के सिक्के पर प्राप्त लिपि से की है। दोनों लिपियों को प्राचीन बताते हुए उन्होंने इन सिक्कों को लगभग समकालीन बताया है। वीरसेन का तो शिलालेख भी मिलता है, जिसका वृक्ष सिक्कों के वृक्ष से मेल खाता है। डॉ० अल्तेकर ने अनुमान लगाया है कि वीरसेन के सिक्के चूँकि अधिकांशतः मथुरा में मिलते हैं, इसलिए उसने मथुरा में नये नाग-वंश की स्थापना की। किन्तु उसके सिक्के पद्मावती और कान्तिपुरी में भी मिलते हैं। अतएव उसके साम्राज्य का विस्तार इन दोनों राजधानियों तक रहा होगा। वीरसेन का शिलालेख फरुखाबाद के जानखट नामक ग्राम में मिला बताया जाता है[1], उस पर 'स्वामिन् वीरसेन संवत्सरे १०,३ (१३)' लिखा है। जानखट के अवशेषों में ताड़ और गंगा के चित्र भी यह सिद्ध करते हैं कि यह वीरसेन नागवंशीय ही होना चाहिए।

स्कन्दनाग

वीरसेन के उपरान्त पद्मावती पर स्कन्दनाग का शासन रहा। डॉ० हरिहर त्रिवेदी के 'दी जर्नल ऑफ दी न्युमिस्मैटिक सोसायटी ऑफ इण्डिया' के मार्च १९५३ के अंक में प्रकाशित लेख के अनुसार उसके सिक्कों पर मयूर, नन्दी और अश्व का चिह्न मिलता है। अश्व चिह्नयुक्त सिक्के के पीछे '···धराज' शब्द पढ़ा गया है। धराज महाराजाधिराज के ही अर्थ की निकटता बताने वाला होना चाहिए। अश्व का चिह्न अश्वमेधयज्ञ की ओर संकेत करता है। डॉ० जायसवाल ने स्कन्दनाग का समय ई० सन् २३० से २५० तक का माना है।

भीमनाग

काल-क्रम में भीमनाग को डॉ० जायसवाल ने स्कन्द का पूर्वकालीन माना है। उसका समय ई० सन् २१० से २३० तक माना है। उसके सिक्कों पर मयूर और नन्दी के चिह्न मिलते हैं। भीम का विरुद महाराज श्री ऊपर बताया जा चुका है।

बृहस्पति नाग

बृहस्पति नाग ही ऐसा अन्तिम नाग राजा था, जिसने मयूर चिह्न का अपने सिक्कों पर उपयोग किया था। उसके पश्चात् अन्य किसी राजा की मुद्रा पर मयूर नहीं मिलता।

---

१. अंधकारयुगीन भारत, पृष्ठ ४१।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मयूर के अतिरिक्त उसके सिक्कों पर नन्दी, त्रिशूल, परशु तथा चक्र भी मिलता है। नन्दी, त्रिशूल, परशु तथा चक्र ऐसे सामान्य चिह्न हैं, जिनमें से किसी भी एक चिह्न से नागवंशीय होने का संकेत मिल जाता है। किन्तु मयूर का चिह्न सामान्य प्रतीत नहीं होता। यह नागवंश के कुछ ही राजाओं की मुद्रा पर मिलता है।

देवेन्द्र नाग

एक सिक्का जिस पर विन्सेंट स्मिथ ने देवस पढ़ा था, तथा जो देव या देवेन्द्र नाग का सिक्का बताया जाता है, बड़ा समस्यात्मक बन गया। डॉ० काशीप्रसाद ने देवस के स्थान पर नवस पढ़ा। इस सिक्के का विस्तार-क्षेत्र बड़ा व्यापक है। यह सिक्का उत्तर-प्रदेश में कानपुर तक मिला है। इसके साथ ही पद्मावती में भी देव के सिक्के मिले हैं। श्री हरिहर निवास द्विवेदी ने देव का राज्यकाल लगभग २७ वर्ष का माना है। उनकी धारणा है कि देवनाग का राज्यकाल २४० ई० के लगभग समाप्त हो गया होगा। किन्तु डॉ० जायसवाल ने उसका राज्यकाल केवल २० वर्ष का बताया है, अर्थात सन् २९० से ३१० ई० तक। देवनाग के सिक्के पर चक्र का चिह्न मिलता है और श्री देवनागस्य या महाराज श्री देवेन्द्र का विरुद प्राप्त होता है।

प्रभाकर नाग

प्रभाकर अथवा जिसे पुंनाग भी कहा गया है, पद्मावती का दसवाँ शासक था। इसकी मुद्रा पर दोनों प्रकार के नन्दियों के चिह्न मिलते हैं, अर्थात दक्षिण नन्दी एवं वाम नन्दी। दक्षिण सिंह और वाम सिंह भी इसकी मुद्रा पर प्राप्त होता है। सिंह का यह चिह्न भी शिवजी से सम्बन्धित है। यह शिव की शक्ति पार्वती का प्रतीक है। लगता है, प्रभाकर विन्ध्यवासिनी का उपासक था। उसके सेनापति का नाम विन्ध्यशक्ति दिया गया है। विन्ध्यशक्ति का बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध पद्मावती से रहा था। इसका उल्लेख भवनाग के प्रसंग में किया जायेगा। प्रभाकर के विरुद के रूप में महाराज श्रीप्रभ मिलता है।

रविनाग

रविनाग के सिक्कों पर अधिराज या महाराज पढ़ा गया है। उसकी मुद्राओं पर नन्दी की मूर्ति अंकित मिलती है। 'दि जर्नल ऑफ दी न्युमिस्मैटिक सोसायटी ऑफ इंडिया' के मार्च १९५३ के अंक में डॉ० हरिहर त्रिवेदी ने इसका उल्लेख किया है।

भवनाग

नवनागों में भवनाग का नाम विशेष महत्व का है। यह उपरोक्त सूची का बारहवाँ राजा है। भवनाग का उल्लेख शिलालेखों में भी मिलता है। उसके सिक्के भी मिलते हैं। दोनों प्रकार की आकृतियों के नन्दी, त्रिशूल, वृत्त, परिक्रमा में अर्द्धचन्द्र तथा वृत्त सहित चन्द्र इसकी मुद्राओं के चिह्न हैं। भवनाग का विरुद महाराज अधिराज श्री मिलता है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तदनुसार भवनाग एक सम्राट थे। उनसे सम्बन्धित जितने स्थानीय क्षेत्रों के राजा थे, वे अपने अधिराज भवनाग की सार्वभौमिक सत्ता को स्वीकार करते थे। किन्तु इस सत्ता का क्षेत्र केवल बाह्य स्वरूप तक ही सीमित था। अपने आन्तरिक मामलों में ये राजा स्वतंत्र थे। इस प्रकार यह एक संघीय शासन का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। वाकाटकों के शिलालेखों से नागवंशी राजाओं के विषय में बहुत-सी जानकारी प्राप्त हो जाती है। डॉ० दिनेशचन्द्र सरकार ने 'सिलेक्ट इन्स्क्रिप्शंस' (पृष्ठ ४१८) में चम्मक में प्राप्त प्रवरसेन (द्वितीय) के ताम्रपत्र के सम्बन्ध में इस बात का उल्लेख किया है, कि नाग साम्राज्य के उन्मूलन के पश्चात् भी गुप्त इन नागवंशीय राजाओं को भुला नहीं पाये और उनका उल्लेख किसी-न-किसी रूप में करना पड़ा। गौतमी पुत्र वाकाटक भी महाराज श्री भवनाग का दौहित्र था। भवनाग ने अपनी लड़की की शादी विन्ध्यशक्ति के प्रतापी पुत्र प्रवरसेन के पुत्र के साथ कर दी थी। इस लेख मे इस बात की ओर भी संकेत मिल जाता है, जिसके कारण भारशिव राजा भारशिव कहलाये। उन्होंने शिवलिंग को सदैव साथ रखा। ये शिव के परम भक्त थे। भवनाग की और चर्चा करने से पूर्व विन्ध्यशक्ति के विषय में संक्षिप्त विचार आवश्यक है।

३.११ विन्ध्यशक्ति

विन्ध्यशक्ति का समय डॉ० जायसवाल के अनुसार २४८ से २८४ ई० तक (अर्थात ३६ वर्ष का शासनकाल) एवं डॉ० अल्तेकर के अनुसार २५५ ई० से २७५ ई० तक (अर्थात ३० वर्ष का शासनकाल) ठहराया गया है। समय का यह अन्तर विशेष महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण बात यह है कि विन्ध्यशक्ति के सन्दर्भ से यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है, कि नागवंशी राजाओं का शासन दक्षिण तक फैल चुका था और अन्य राजा भी उनके पराक्रम का लोहा मानने लगे थे। विन्ध्यशक्ति एक साधारण व्यक्ति मात्र था, किन्तु अपने पराक्रम से उसने पर्याप्त शक्ति अर्जित की थी। उसकी शक्ति को पहचान कर ही उसे सेनापति बनाया गया होगा। वैसे विन्ध्यशक्ति किसी व्यक्ति का नाम न हो कर किसी पद का सूचक प्रतीत होता है : यह पद सम्भवतः सेनापति का ही होगा। डॉ० अल्तेकर ने पुराणों के कथन का सन्दर्भ देते हुए विन्ध्यशक्ति को विदिशा और पुरिका का शासक कहा है। वृहत्संहिता में तो पुरिका को दशार्ण का निकटवर्ती बतलाया है। उसके एक ओर विदर्भ और दूसरी ओर मूलक बतलाया गया है। अल्तेकर ने वाकाटकों का मूल स्थान पश्चिमी मध्य देश या बरार बतलाया है। किन्तु डॉ० जायसवाल ने इसे चिरगाँव से छः मील दूर झाँसी जिले में पहचाना है। यह ओड़छा राज्य के उत्तरी भाग में पड़ता है। वाकाटकों के सम्बन्ध में डॉ० जायसवाल का कथन उल्लेखनीय है :

"उसके पास ही विजौर नाम का एक और गाँव है और प्रायः वागाट के साथ उसका भी नाम लिया जाता है। लोग विजौर वागाट कहा करते हैं। यह ओड़छा की तहरौली तहसील में है। यह कयना और दुगरई नाम की दो छोटी-छोटी नदियों के बीच में है, जो

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आगे जा कर बेतवा में मिलती हैं। यह ब्राह्मणों का बड़ा और बहुत पुराना गाँव है और इसमें अधिकतर भागौर ब्राह्मण रहते हैं।"

विन्ध्यशक्ति को यदि सेनापति न भी मानें, तो भी भवनाग का करद राजा मानना पड़ेगा। विदिशा और पुरिका का शासक होते हुए भी भवनाग का करद राजा होने पर भी उसकी स्थिति पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।

३.१२ भवनाग और महरौली का स्तम्भलेख

भवनाग की मुद्रा के चिह्नों को महरौली के स्तम्भशीर्ष के सन्दर्भ में देखने से उसके शौर्य और पराक्रम पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। यद्यपि भवनाग और समुद्रगुप्त के समय में पर्याप्त अन्तर है, किन्तु समय के इस अन्तर ने नागवंशीय कीर्ति को विनष्ट नहीं किया, महरौली के स्तम्भ से इस बात की पुष्टि हो जाती है।

स्तम्भलेख इस प्रकार है :

"वह जिसने अपनी भुजा की कीर्ति को अपने खड्ग द्वारा अभिलिखित किया, तब जब कि बंगदेश के युद्ध में उसने अपनी छाती से उन शत्रुओं को रौंद डाला, जो शत्रु समवेत हो कर उसका मुकाबला करने आये थे, वह, जिसके द्वारा सिन्धु के सप्तमुखों को पार करके वाह्लिकों को विजित किया गया।"

"वह, जिसके शौर्य के पवन से दक्षिण का जलनिधि अब भी सुवासित है, वह, जिसकी उस शक्ति के अपार उत्साह की कीर्ति, जिसने अपने शत्रुओं को पूर्णतः नष्ट कर दिया था, महावन में प्रज्वलित अग्नि के शमन होने के पश्चात् उसके अवशिष्ट ताप के समान, अभी भी क्षिति पर शेष है, यद्यपि वह नरपति मानो थक कर, इस संसार को छोड़ कर मानो स्वर्ग में चला गया है, जो उसने अपने कर्मों द्वारा जीता है, तथापि वह इस पृथ्वी पर अपनी कीर्ति के रूप में स्थित है, उस समग्र चन्द्र जैसे श्री-सम्पन्न मुख वाले, जिसने अपनी भुजाओं द्वारा अर्जित एकमात्र अधिराज के पद को प्राप्त किया और बहुत समय तक भोगा। उस चन्द्रविरुद्धारी भूमिपति भव ने (न कि भाव ने) विष्णु में अपनी मति स्थित कर विष्णु-पद नामक गिरि पर विष्णु की यह भुजा स्थापित की।"

(इस अभिलेख की पाँचवी पंक्ति में विष्णु के पहले का शब्द स्पष्ट नहीं है, प्रिंसेप ने इसे धावेन पढ़ा। भाऊदाजी इसे भावेन पढ़ते हैं। फ्लीट उसे धावेन ही मानते हैं, परन्तु कहते हैं कि यहाँ उत्कीर्णक की गलती से भावेन के स्थान पर धावेन हो गया है। डॉ० दिनेशचन्द्र सरकार लिखते हैं कि इसका पहला अक्षर 'ध' हो सकता है, सम्भव है कि वह 'व' हो। उनके मत से वह 'भ' नहीं हो सकता। वे यह भी लिखते हैं, कि प्रलोभन यह होता है कि उसे 'देवेन' पढ़ा जाय (१—कारपस इनस्क्रिप्शंस इण्डिका, खंड ३, पृष्ठ २४२)। किन्तु एक प्रलोभन यह भी होता है, कि इसे भवेन पढ़ा जाये (भव द्वारा)।

इस लेख से भवनाग अथवा नागवंश के किसी पराक्रमी राजा के विषय में तीन बातों की जानकारी हो जाती है :—

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(१) बंग की ओर उस राजा के विरुद्ध कोई संघ बना था, और उस संघ का उन्मूलन करने में उस राजा का यश सर्वज्ञात है।

(२) सिन्धु पार करके उस राजा ने वाहीकों को परास्त किया था।

(३) दक्षिण के समुद्र-तट तक उसकी कीर्ति फैली हुई थी।

इन तीनों बातों को भवनाग के सन्दर्भ में समझा जा सकता है। भवनाग के संघ शासन के विपरीत ही लिच्छवि और गुप्त वंश का गठबंधन हुआ होगा, जिसका प्रभाव पद्मावती के शासन पर पड़ा, और वह नागों के यश-सौरभ की राजधानी गुप्तों के अधिकार में चली गयी।

पूर्व में ही नहीं, उत्तर में सिन्धु नदी के पार भी नागों का पराक्रम छा गया था, और वाहीकों को पराजित करने के सम्बन्ध में भी इतिहासकारों ने लिखा है।

जहाँ तक दक्षिण के समुद्र तक कीर्ति फैल जाने का प्रश्न है, उसे विन्ध्यशक्ति और उसके द्वारा संस्थापित वाकाटक साम्राज्य के सन्दर्भ में रख कर भली-भाँति समझा जा सकता है। भवनाग की पुत्री का विवाह-सम्बन्ध दक्षिण में हो गया था। परिणामस्वरूप नवनागों का प्रभुत्व दक्षिण तक फैल चुका था। साथ ही नवनागों का दक्षिण तक का साम्राज्य सुरक्षित हो गया था। उधर सुदूर काँची में पल्लवों के साथ नाग राजकुमारी का विवाह-सम्बन्ध जुड़ चुका था। ये राजा भव के करद माण्डलिक नहीं थे, परन्तु संघीय सूत्रों में उससे सम्बद्ध थे। तभी भवनाग ने अधिराज का विरुद धारण किया।

इस लेख से भवनाग के शासन के कुछ अन्य पक्षों पर भी प्रकाश पड़ता है। सबसे प्रधान पक्ष है—उसकी विष्णु पूजा का। पद्मावती के विष्णु मन्दिर की प्राप्ति यह निर्णय करने में सरलता ला देती है, कि शिव के साथ ही नाग राजा विष्णु में भी आस्था रखते थे। पद्मावती में तो एक विष्णु मूर्ति भी प्राप्त हुई है। इस युग में शैव और वैष्णव एक-दूसरे से पृथक् नहीं थे, वरन् इन दोनों मतावलम्बियों में समन्वय की भावना दृढ़ हो गयी थी। भवनाग की मुद्राओं पर अर्द्धचन्द्र की आकृति शिव की उपासना की ओर संकेत करती है। उसके सिक्कों पर अंकित चक्र के विषय में यह सम्भावना उचित प्रतीत होती है, कि यह विष्णु का सुदर्शन चक्र ही होगा।

पद्मावती में शासन करने वाले अन्तिम नाग राजा हैं—गणपति। इसे गणेन्द्र अथवा गणपेन्द्र नाम भी दिया गया है। वाम नन्दी, वाम सिंह एवं परिक्रमा के भीतर वृक्ष के चिह्न इसकी मुद्राओं पर अंकित मिले हैं। इसका विरुद 'महाराज श्री' मिलता है। गणपति नाग के अनेक सिक्के प्राप्त हुए हैं। भवनाग तो महाराजाधिराज था, किन्तु गणपति नाग केवल 'अधिराज' रह गया। इसका कारण यह हो सकता है, कि अत्यन्त विशाल साम्राज्य की व्यवस्था न सम्हाल पाने के कारण उसने उन राज्यों को स्वतंत्र घोषित किया हो, और केवल शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की नीति का परिपालन किया हो। सम्भव है, उन पर नैतिक आधिपत्य मात्र बना रहा हो।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

३.१३ गणपति नाग

अन्तिम नाग राजा के नाम से भी इसके सम्बन्ध में कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। गणपति, गजेन्द्र एवं गणपेन्द्र सभी गण भाव का बोध कराते हैं। इससे एक गणतन्त्र की भावना को प्रबल समर्थन मिलता है। यह गणराज्य की एक प्रवृत्ति का सूचक प्रतीत होता है। यह एक गणाध्यक्ष की भावना थी, जो नागों के विस्तृत प्रभाव को इंगित करने के साथ-साथ सभी घटकों को एकता के सूत्र में बाँधे रखना चाहती थी।

गणपति के सम्बन्ध में 'भावशतक' नामक पुस्तक की सूचना डॉ० जायसवाल ने अपनी पुस्तक 'अंधकारयुगीन भारत' में दी है। इससे गणपति नाग के स्वभाव पर प्रकाश पड़ता है। पुस्तक में गणपति को धाराधीश लिखा गया है। गणपति को अत्यन्त उग्र स्वभाव का बताया गया है। वह एक युद्धप्रिय और परिश्रमी योद्धा था, तथा अन्य नाग उससे भयभीत होते थे।

यथा—नागराज समं (शतं) ग्रन्थं नागरान तन्वता
अकारि गजवक्त्र श्री नागराजो गिरां गुरुः ॥
तथा—पन्नगपतयः सर्वे वीक्षन्ते गणपति भीताः।
(८०)। धाराधीशः (६२)[1]

यह हस्तलिखित-काव्य स्वयं गणिपति के शासनकाल में ही लिखा गया बताया जाता है, और स्वयं गणपति को समर्पित किया गया था। किन्तु इस ग्रन्थ में उस राजा का नाम गजवक्त्र श्री नागराजः दिया गया है। उसके वंश को टाक वंश बताया गया है। डॉ० जायसवाल ने गणपति नाग का शासनकाल सन् ३१० से ३४४ तक माना है।

३.१४ नाग साम्राज्य का पतन

गणपति नाग का शासन नागवंशों के लिए परम उत्कर्ष का शासन था। चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपनी सेना को सुदृढ़ बना लिया, और समस्त उत्तरी भारत को आतंकित कर दिया। गणपति नाग, नागसेन और अच्युत नन्दी कौशाम्बी के युद्ध में परास्त हो गये। इसी प्रकार नागदत्त, मत्तिल, रुद्रदेव, चन्द्रवर्मा और बलिवर्मा का राज्य भी समाप्त कर दिया गया। नाग-राज्य की सीमा में प्रवेश करके मालव, आभेर, काक, खर्परक तथा आर्यावर्त के अन्य गणराज्य यौधेय, अर्जुनायन, माद्रक तथा प्रार्जुन को अपने अधीन किया, तथा दक्षिणपथ के पहरेदार वाकाटक रुद्रसेन को भी परास्त कर अपने अधीन कर लिया। आर्यावर्त की विजय का यह कार्य ई० सन् ३५० तक सम्पन्न हो चुका था।

गणपति नाग तथा अन्य राजाओं के अन्तिम दिनों के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं। सम्भवतः युद्ध में मारे गये होंगे। वीरसेन जीवित बचा था। समुद्रगुप्त ने वीरसेन को अपने अधीन बना लिया, और वीरसेन को अपना करद राजा नियुक्त किया। किन्तु वीरसेन अब भी स्वतन्त्र होने के सपने देख रहा होगा, जिसका आभास समुद्रगुप्त को लग गया।

---

१. कैटेलाग ऑव मिथिला मैनुस्क्रिप्ट्स, खण्ड २, पृष्ठ १०५।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परिणामतः गुप्तों ने पद्मावती नगरी को ही उजाड़ डाला। बाणभट्ट ने इस घटना की ओर अपने ग्रन्थ 'हर्षचरित' में उल्लेख किया है। 'हर्षचरित' के षष्ठोच्छ्वास में उल्लेख है कि पद्मावती का नागसेन सारिका द्वारा भेद खोल दिये जाने पर नष्ट हुआ।

समुद्रगुप्त ने अपनी विजयों के पश्चात साम्राज्य को संगठित करने में बड़ी कूटनीति से काम लिया। उसने अपने पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय का विवाह वीरसेन की पुत्री कुबेरनाग से कर लिया, क्योंकि वह जानता था कि युद्ध में हरा देने मात्र से विद्रोह की ज्वाला शान्त होने वाली नहीं थी। इसलिए उसने विवाह का एक राजनैतिक अस्त्र के रूप में उपयोग किया। इस विवाह-सम्बन्ध द्वारा वह नागों को ही नहीं अपितु नाग दौहित्र वाकाटकों को भी शान्त बनाये रखना चाहता था। कुछ समय तक यही स्थिति चलती रही, और जब यह देखा गया कि अब स्थिति काबू में आ चुकी है, तो वीरसेन को समाप्त कर दिया गया। समाप्त कर देने के लिए किसी-न-किसी बहाने की आवश्यकता तो थी ही। यह बहाना सारिका ही बन गयी।

आगे चल कर एक विवाह-सम्बन्ध और हुआ, जिसके आधार पर वाकाटक साम्राज्य का शेष तो समाप्त हो ही गया, किन्तु अल्प काल में ही वाकाटक साम्राज्य गुप्त साम्राज्य में तिरोहित हो गया। चन्द्रगुप्त द्वितीय और कुबेरनाग से उत्पन्न पुत्री प्रभावती गुप्ता का विवाह पृथ्वीसेन वाकाटक के पुत्र रुद्रसेन द्वितीय के साथ किया गया। रुद्रसेन द्वितीय के पश्चात शासन की बागडोर कुबेरनाग-पुत्री प्रभावती गुप्ता ने सम्हाली क्योंकि राजकुमार अवयस्क थे।

गुप्तों के आविर्भाव के साथ-ही-साथ पद्मावती के वैभव के दिन समाप्त होने लगे थे। समृद्धि और उत्कर्ष के दिन एक बार समाप्त होने के पश्चात फिर वापस नहीं आये। गुप्तवंश के शासकों ने पद्मावती के शासकों के आदर्श एवं रुचियों पर कोई ध्यान नहीं दिया, और पद्मावती की शोभा सदा के लिए विलीन हो गयी।

बताया जाता है कि पद्मावती के शासन की बागडोर कुछ समय के लिए परमार शासक पुन्नपाल ने भी सम्हाली थी। उसके पश्चात नरवर का कछवाहा शासक भी इस पर अधिकार जमाये रहा। यह शासक दिल्ली का करद शासक था। पवाया में जो किला है, उसका संस्थापक तो पुण्यपाल अथवा पुन्नपाल को ही समझा जाता है, किन्तु अब जिस रूप में वर्तमान है, उसे नरवर के कछवाहा शासक ने बनवाया था। यह किला जिन ईंटों से बना है, वे ईंटें तो प्राचीन हैं, पर कहीं से खोदी हुई हैं।

पद्मावती के अपकर्ष के दिनों की कहानी बड़ी अस्पष्ट प्रतीत होती है। ऐसे संकेत अवश्य मिलते हैं कि मध्यकाल में पवाया पर मुसलमानों का आधिपत्य हो गया था। पवाया से एक मील के दायरे में ही पाँच मकबरे और एक मस्जिद हैं। अन्य अवशेष तो हैं ही, जो यह सिद्ध करते हैं, कि यह मुसलमानों के अधीन रही होगी। गुम्बदहीन ऐसे कमरे मिले हैं, जिन पर स्थापत्य-कला की कारीगरी नहीं दर्शायी गयी है। यह मुगलकाल के आरम्भ काल की स्थापत्य-कला है।

इस प्रकार पद्मावती का इतिहास अधूरा अवश्य है, किन्तु यह अधूरा इतिहास कई पूरे इतिहासों से अधिक महत्वपूर्ण है। अब तक जिसे अंधकार युग कहा जाता था, वह

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वस्तुतः अंधकार युग नहीं था। उस समय जो कला एवं राजनैतिक दर्शन के प्रयोग हुए, उनकी विशेष महत्ता आज के युग में भी स्वीकार की जा रही है।

३.१५ नागों की शासन-प्रणाली

नागों की शासन-प्रणाली विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। ईसा की पहली शताब्दी में भारत में जो शासन-प्रणाली प्रचलित थी, आज बीसवीं शताब्दी में उसका संशोधित स्वरूप प्रयोग में लाया जा रहा है। यह शासन-प्रणाली संघात्मक कही जा सकती है। कहने का तात्पर्य यह है, कि पद्मावती में केन्द्रीय शासन स्थापित था, और भारत के अन्य क्षेत्रों में उसकी शाखाएँ बिखरी हुई थीं। मथुरा और कान्तिपुरी का उल्लेख तो पुराणों में भी किया गया है। विन्ध्यशक्ति के प्रकरण में हम यह देख चुके हैं, कि वह भी एक अधीनस्थ शासक था। गुप्तों ने भी संघीय शासन-पद्धति नागों से ही सीखी होगी। डॉ० जायसवाल ने भारशिव वंश की दो भिन्न-भिन्न शाखाओं का उल्लेख किया है। पद्मावती के शासन को उन्होंने टाकवंशीय शासन बताया है। इसका आधार उन्होंने 'भाव-शतक' नामक हस्तलिखित प्रति को माना है, जो वीरसेन के समय में ही लिखी गयी थी। मथुरा के राजवंश को उन्होंने यदुवंशी बताया है। यह नाम 'कौमुदी महोत्सव' नामक नाटक से लिया गया है। इन दोनों ग्रन्थों का रचना-काल एक ही बताया गया है। मथुरा के शासकों के सिक्के कम मिलते हैं। इन शासकों ने अपने सिक्के नहीं चलाये। इससे यह अनुमान सहज में ही लगाया जा सकता है, कि पद्मावती में एक केन्द्रीय टकसाल होगी, जहाँ से सिक्के बन कर अन्य स्थानों पर जाते होंगे। पद्मावती का राज्य धनधान्य-सम्पन्न और गौरवशाली राज्य था।

नागों की शासन-प्रणाली के सम्बन्ध में गणपति नाग का नाम बड़े महत्व का है। गणपति का अर्थ होता है गणों का स्वामी। इससे इस बात का पता चलता है, कि नागों के समय में गणराज्य था, और गणपति इस संघराज्य की केन्द्रीय सत्ता को सम्हाल रहा था। गणपति कोई वास्तविक नाम नहीं था। इसका प्रमाण यह है कि गणपति के दो अन्य नाम भी दिये गये हैं। एक है गणेन्द्र, और दूसरा है गणपेन्द्र। गणपति और गणेन्द्र लगभग समान अर्थ वाले शब्द हैं। इन नामों में एक अन्य विशेषता परिलक्षित होती है। इन तीनों नामों में गण शब्द समान है। इससे गणराज्य का विचार और भी पुष्ट हो जाता है। गणराज्य की यह प्रथा नागों के शासनकाल तक ही प्रचलित रही हो, ऐसी बात नहीं। प्राचीन इतिहास में इस प्रकार के प्रमाण उपस्थित हैं, जिनसे यह निर्णय किया जा सकता है कि गुप्तों के शासनकाल में भी यह प्रथा बनी रही थी।

३.१६ संघीय शासन का स्वरूप

इस बात का निश्चय होने के उपरान्त कि पद्मावती में संघीय शासन-व्यवस्था रही होगी, इस बात पर भी विचार करना प्रासंगिक प्रतीत होता है कि यह संघीय व्यवस्था कैसी होगी ? इस विषय में महत्वपूर्ण बात यह है, कि पद्मावती शासन और

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संस्कृति का केन्द्र तो अवश्य थी, किन्तु सभी गणराज्य पूर्णतः अधीन नहीं थे। कई स्वतंत्र राज्य थे और अपने शासन और कार्यों के लिए स्वतंत्र होते हुए भी कुछ मामलों में केन्द्र से निर्देश प्राप्त करते होंगे। केन्द्र इनका प्रतिनिधित्व करता था, चाहे वे अधीनस्थ राज्य हों अथवा स्वतंत्र राज्य।

उदाहरण के लिए युद्ध का प्रश्न है। युद्ध-कार्यों में कुषाणों के विरुद्ध संघबद्ध प्रयास किया गया था, जिसका नेतृत्व भारशिव नागों ने किया था। यद्यपि इस सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है। डॉ० अल्तेकर इस स्थापना से सहमत नहीं हैं। वे कहते हैं कि कुषाणों के साम्राज्य को ध्वस्त करने में पहला कदम यौधेयों ने उठाया, और अपने निकट पड़ोसी कुणिन्द और अर्जुनायनों के सहयोग से कुषाणों को परास्त किया था। किन्तु इस बात को सही मानते हुए भी मध्यदेश की समस्या हल नहीं हो पाती। मध्यदेश से कुषाणों को परास्त करने का कार्य करने वाले नवनाग और मालव संघटित हुए होंगे। कुषाणों के हाथ से पांचाल, मथुरा, सारनाथ, मगध, पद्मावती और विदिशा के निकल जाने का एकमात्र कारण था, एकाधिक शक्तियों का संघबद्ध प्रयत्न। नवनागों की श्रेष्ठता और गुरुता का आभास हमें कुछ अन्य साक्ष्यों के द्वारा भी होता है। वाकाटकों से नवनागों के विवाह-सम्बन्ध का उल्लेख प्रायः किया जाता है। नवनागों की कन्या प्राप्त करने पर वाकाटकों को गर्व का अनुभव हुआ था, और इस राजनैतिक विवाह को बड़ा महत्व दिया गया था। वाकाटकों के शिलालेख में भी इस बात का उल्लेख किया गया। एक दूसरी बात यह, कि गुप्त सम्राटों ने भी कुबेरनागा से विवाह किया था। इसका कारण भी नागों की श्रेष्ठता ही रही होगी। समुद्रगुप्त के इलाहाबाद वाले कीर्तिस्तम्भ में नवनागों का उल्लेख भी नवनागों की श्रेष्ठता का परिचायक है।

डॉ० जायसवाल ने नागों के तीन राजवंशों का उल्लेख किया है। भारशिवों का एक वंश था। वे साम्राज्य के नेता और सम्राट् थे, और उनके अधीन प्रतिनिधि-स्वरूप शासन करने वाले और भी कई वंश थे। कई प्रजातंत्री राज्यों को इसी संघ में सम्मिलित बताया गया है। पद्मावती और मथुरा दो शाखाएँ भारशिवों के द्वारा स्थापित की गयी थीं। पद्मावती वाले राजवंश को उन्होंने टाकवंश नाम दिया है, जिसका आधार 'भावशतक' नामक पुस्तक है, जो गणपति नाग के समय में लिखी गयी थी और उसी को समर्पित की गयी थी। मथुरा वाले वंश का नाम यदुवंश था। 'कौमुदी महोत्सव' नामक ग्रन्थ में इस वंश का नाम आया है। इस सम्बन्ध में उनका निष्कर्ष यह है, कि भारशिव यदुवंशी थे और टक्क देश पंजाब से आये थे।

किन्तु नागों के तीन वंशों वाली बात को अन्य इतिहासकारों द्वारा समर्थन नहीं मिला है। पुराणों में भी इन वंशों का उल्लेख नहीं मिलता। अतएव नागों के तीन वंश न मान कर तीन विभिन्न शाखाएँ मानना अधिक समीचीन होगा। ये नवनाग वंश की ही तीन शाखाएँ थीं, जैसा कि "नवनागाः पद्मावत्यां कान्तिपुर्याम् मथुरायाम्" कथन से प्रगट होता है।

इस सम्बन्ध में एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है, कि मथुरा के नागों ने अपने सिक्के प्रचलित नहीं किये। वहाँ सम्भवतः टकसाल नहीं थी, टकसाल थी पद्मावती में। इससे

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यह धारणा और भी पुष्ट हो जाती है, कि किसी-न-किसी रूप में संघ-व्यवस्था रही होगी, कि सिक्के प्रचलित करने का अधिकार केवल पद्मावती को ही प्राप्त हुआ हो। यह स्वतंत्र साम्राज्य था, और नागदत्त (लाहौर वाली मुद्रा के महेश्वर नाग का पिता) का वंश भी इसी के अधीन होगा। इसके अन्तर्गत एक अन्य राजवंश राज्य करता था। बुलंदशहर जिले के इन्द्रपुर (इन्दौर खेड़ा) अथवा उसके आस-पास इस राज्य के एक शासक मत्तिल की मुद्रा पर नाग चिह्न मिला है। इस पर राजन् उपाधि अंकित नहीं मिली है। इस सम्बन्ध में इन्दौर के ताम्रलेखों ने प्रमाण प्रस्तुत किया है। ये ताम्रलेख सर्वनाग नामक शासक ने लिखवाये थे, जोकि समुद्रगुप्त का एक गवर्नर था।

नागदत्त, नागसेन या मत्तिल अथवा उनके पूर्वजों ने भी अपने सिक्के नहीं चलाये। भारशिवों के समय में अहिच्छत्रों के भी किसी अन्य शासक या गवर्नर ने भी अपने सिक्के नहीं चलाये। सिक्के चलाने वालों में केवल अच्युत का नाम आता है। समुद्रगुप्त के शिलालेख में अच्युत का नाम अच्युतनन्दी मिलता है। जितने शासकों के सिक्के नहीं मिलते, वे स्वतंत्र शासक थे या नहीं, इस विषय में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता है। अनुमान लगाया जाता है कि इस प्रकार के राज्य किसी साम्राज्य की शाखा होंगे, अथवा गणराज्य की एक इकाई होंगे। सिक्कों के लिए उन्हें प्रधान राज्य के ऊपर निर्भर रहना पड़ता होगा।

समुद्रगुप्त के शिलालेख में आर्यावर्त के शासकों को दो वर्गों में विभाजित किया गया है। एक वर्ग का प्रारम्भ गणपति नाग से होता है। इस वर्ग में उन शासकों की सूची दी गयी है, जो समुद्रगुप्त के प्रथम आर्यावर्त युद्ध में मारे गये थे। दूसरे वर्ग में उन शासकों के नाम हैं जिन पर युद्ध के समय आक्रमण हुआ था। इस सूची का प्रारम्भ रुद्रदेव अर्थात् रुद्रसेन से होता है। इन दोनों शाखाओं के अतिरिक्त भारशिवों के साम्राज्य की स्वतंत्र इकाइयों के रूप में मालवा और राजपूताने और सम्भवतः पंजाब के कुणिंदों के भी गणराज्य रहे होंगे। इन राज्यों के द्वारा अपने-अपने सिक्के चलाये गये थे।[1] इस बात में सन्देह नहीं कि जो राज्य अपने सिक्के चला रहे थे, वे स्वराज्य भोगी राज्य होंगे, किन्तु अन्य ऐसे राज्यों के साथ, जिनके स्वयं के सिक्के नहीं थे, उनके सम्बन्ध कैसे थे और आर्थिक व्यवस्था में वे कैसे सम्पर्क स्थापित किये हुए थे, इस सम्बन्ध में अन्तिम रूप से मत नहीं दिया जा सकता। इसका कारण उन साक्ष्यों का अभाव है, जिनके आधार पर यह स्वतंत्र रूप से कहा जा सके कि किसी राज्य विशेष की स्थिति क्या थी। इस प्रसंग में सिक्कों पर अंकित विरुद का साक्ष्य ही एक ऐसा साक्ष्य है, जिसे निर्णायक माना जा सकता है। भारशिव वंश के राजाओं के सिक्कों पर जो अधिराज शब्द मिलता है, वह इस तथ्य को प्रगट करता है कि यह साम्राज्य कई राज्यों का प्रतिनिधित्व करने वाला होना चाहिए।

भारशिवों के शासन-कार्य एवं आचरण में हमें किसी प्रकार की जटिलता नहीं दिखायी देती। भारशिवों के आराध्यदेव योगी और परम त्यागी थे। उनके भक्तों ने भी

---

१. अंधकारयुगीन भारत, पृष्ठ ६२-६३।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वैसा ही त्यागमय जीवन बिताना उचित समझा। उन्होंने जीवन में शान-शौकत को विशेष महत्व नहीं दिया। किन्तु वे परिश्रमशील जीवन बिताते थे, और बड़े-बड़े कार्य किये। पद्मावती एक सुन्दर नगरी थी, और नाग सौन्दर्य के प्रेमी थे। उन्होंने पद्मावती की टकसाल में सिक्कों का निर्माण किया। कुशनों के सिक्कों का बहिष्कार करके प्राचीन हिन्दू ढंग के सिक्के बनवाये। उनकी संख्या इतनी अधिक थी, कि आज भी पद्मावती में बरसात के मौसम में सिक्के मिल जाते हैं।

भारशिव राज्य लोलुप नहीं थे। उन्होंने अन्य शासकों को भी इस बात की स्वतंत्रता दे दी होगी, कि वे अपने सिक्के स्वयं ही बना लें। वे प्रजातंत्र में आस्था रखने वाले थे, और जानबूझ कर अन्य राज्यों को सुविधा प्रदान करने में गौरव का अनुभव करते थे। उन्हें दरिद्रता से घृणा न थी। भारशिवों के चारों ओर हिन्दू राज्य छाये हुये थे। इस काल में उनका एक गण बन गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि शिव के बनाये हुए नन्दी या गणों में वे ही प्रमुख थे। वे सर्वत्र स्वतंत्रता का प्रचार करते थे तथा उसकी रक्षा भी करते थे। अश्वमेध यज्ञों के आधार पर यह कहा जा सकता है, कि भारशिव एकछत्र शासन स्थापित करना चाहते थे, किन्तु गणराज्यों की उपस्थिति यह सिद्ध कर देती है, कि उन्होंने राज्य-लोलुपता से प्रभावित हो कर ऐसा नहीं किया। भारशिवों की धर्म में बड़ी आस्था थी, और वे राष्ट्रीय दृष्टिकोण से त्यागशील जीवन व्यतीत करते थे। भारशिवों ने अपना उद्देश्य बना कर कुषणों के लोलुपतापूर्ण साम्राज्यवाद का अन्त कर दिया था, और हिन्दू जनता में नैतिक दृष्टि से जो दोष आ गये थे, उनका निवारण करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया और वे उसमें सफल भी हुए। उन्होंने अपने आचरणों को भौतिक स्वार्थ के द्वारा कलंकित नहीं किया। वे अपने आध्यात्मिक कल्याण और विजय के लिए अपने उद्देश्य को पूरा करने के पश्चात् शिव की भक्ति में लीन हो गये थे। वे शंकर भगवान के सच्चे भक्त थे, और उनकी उपासना को ही परम धर्म समझते थे। उन्होंने आर्यावर्त में हिन्दू साम्राज्य की फिर से स्थापना की। वे राष्ट्रीय उद्देश्य को ले कर चले थे, जिसमें उन्हें पर्याप्त सफलता मिली। नागों की शासन-प्रणाली एक आदर्श और सरलतम शासन-प्रणाली थी। यद्यपि उन्होंने धार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति के साथ ही राजनैतिक उद्देश्यों को भी अपने सामने रखा, किन्तु जनता के सामान्य कल्याण के लिए उन्होंने अनेक प्रयत्न किये और हिन्दुत्व की प्राणप्रतिष्ठा में अपूर्व योगदान दिया।

नागवंश के शासन को पूर्ण रूप से गणतंत्र एवं गणसंघ तो नहीं कहा जा सकता, जिसकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिभाषा का आधुनिक काल में विकास हुआ है। आज की कसौटी पर त्यागी पौरजानपद एवं समसुख दुःख-धर्म महाराजाधिराजों का राजतंत्र खरा तो नहीं उतर सकता, किन्तु अपने आरम्भिक रूप में वह पर्याप्त विकसित था। राजाओं के कार्य प्रजा के हित और कल्याण को साथ ले कर चलते थे। राजा को किसी-न-किसी रूप में लोक प्रतिनिधि का अधिकार प्राप्त रहा होगा। प्रजा का सहयोग राजतंत्र का एक आवश्यक तत्व था। इस युग में एक राज्य की सीमा दूसरे राज्य से मिली रही होगी। किन्तु ऐसे विवाद नहीं उठ खड़े हुए होंगे, जैसे आज उठ रहे हैं। यह सीमाएँ दो राज्यों के स्नेह-सम्बन्धों

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

को दृढ़तर बनाती रहीं। यदि एक राज्य की कन्या दूसरे राज्य में ब्याह दी जाती थी, तो इससे दो राज्यों के सम्बन्ध दृढ़तर ही हो जाते थे। एक वंश अपने आप को दूसरे का दौहित्र कहने में आदर का अनुभव करता था। इन मातामहों, मातुलों, दौहित्रों और भागिनेयों की दुर्धर्ष शक्तियाँ समवेत रूप से देश के शत्रुओं के दाँत गिन-गिन कर तोड़ने में लगी थीं, तथा मध्यदेश के जानपद और पौरजनों की तेजस्विता इन गणपति, चन्द्रांश, अच्युत, मत्तिल, रुद्रदेव, नागसेन, नन्दी आदि के रक्त की अन्तिम बूँद तक शेष रहते आक्रांताओं से जूझती रही।

इस युग में भारत की स्वाभाविक प्रवृत्तियों के अनुकूल जनपदों के गणराज्यों का पूर्ण उत्कर्ष हुआ था, तथा वे एक सूत्र में संघबद्ध हो गये थे, जिसका कारण समान उद्देश्य ही होगा। इस विशाल प्रदेश में उस समय कोई एकतंत्री सत्ता नहीं थी। किन्तु ऐसे समय में ऐसे सशक्त समाज का निर्माण किया गया, जिसमें व्यक्ति और समाज दोनों को आत्मगौरव का अनुभव हुआ होगा। केन्द्रीय शक्ति ने अपनी सार्थकता को सिद्ध करने में अपने घटकों के कल्याण को प्रमुखता दी होगी।

३.१७ गणराज्यों की समाप्ति

यह बात तो सही है कि नागवंश के केन्द्रस्थलों में से पद्मावती सर्वप्रमुख है। नागवंश का साम्राज्य बहुत विस्तृत रहा होगा। किसी-न-किसी रूप में इसका प्रभाव बंगाल से पंजाब तक और मगध से सुदूर दक्षिण तक फैला हुआ था। इस गणसंघ ने यूनानी शक और कुषाणों की जय-लालसा को तो समाप्त कर ही दिया था, किन्तु कालान्तर में वह स्वयं भी गुप्तों के विजय-चक्र का शिकार बन गया था। यह गणशक्ति धीरे-धीरे नष्ट होती गयी। इसका कारण केन्द्रीय शक्ति का शिथिल हो जाना ही रहा होगा, जिसके शिथिल हो जाने पर दूरस्थ इकाईयाँ परस्पर असम्बद्ध हो गयी थीं, जो एक-एक करके गुप्त साम्राज्य में मिल गयीं। यदि संघ अथवा केन्द्रीय शक्ति क्षीण नहीं हुई होती, तो उसके घटकों में इतना शैथिल्य न आता और पद्मावती अपनी समृद्धि और गौरव के दिन देखती रहती।[१]

पद्मावती ने ही नहीं, नवनागों के मथुरा केन्द्र ने भी अपना प्रभुत्व खो दिया था, जिसकी ओर डॉ० कृष्णदत्त वाजपेयी ने अपनी पुस्तक 'मथुरा' में संकेत किया है।

"नागों के शासन-काल में मथुरा में शैव-धर्म की विशेष उन्नति हुई। नाग देवी-देवताओं की प्रतिमाओं का निर्माण भी इस काल में बहुत हुआ। अन्य धर्मों का विकास भी साथ-साथ होता रहा। ३१३ ई० में मथुरा के जैन श्वेताम्बरों ने स्कन्दिल नामक आचार्य की अध्यक्षता में मथुरा में एक बड़ी सभा का आयोजन किया। इस सभा में कई धार्मिक ग्रन्थों के शुद्ध पाठ स्थिर किये गये। इसी वर्ष दूसरी ऐसी ही सभा बलभी में हुई। नागों के समय में मथुरा और पद्मावती नगर बड़े समृद्ध नगरों के रूप में विकसित हुए। यहाँ

१. मध्यभारत का इतिहास, पृष्ठ ५६८-६९।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विशाल मन्दिर, महल, मठ, स्तूप तथा अन्य इमारतों का निर्माण हुआ। धर्म, कला-कौशल तथा व्यापार के ये प्रधान केन्द्र हुए। नाग-शासन का अन्त होने के बाद मथुरा को राजनैतिक केन्द्र होने का गौरव फिर कभी न प्राप्त हो सका।'[१]

यह बात तो स्पष्ट है कि नागों के शासन का सदैव के लिए अन्त हो गया, किन्तु नागों के द्वारा प्रचलित कला, शासन-प्रणाली और धर्मोपासना अपनी अमिट छाप छोड़ गयीं, जो शताब्दियों तक कालकवलित न हो पायीं, और पद्मावती में आज भी अपनी कीर्ति-पताका फहरा रही हैं।

---

१. कृष्णदत्त वाजपेयी—मथुरा, पृष्ठ २०

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अध्याय चार

पद्मावती के ध्वंसावशेष

उत्खनन के पूर्व एवं उसके पश्चात् भी पवाया के निकटवर्ती क्षेत्र से ऐसे अनेक अवशेष मिले हैं, जो पद्मावती के प्राचीन स्वरूप पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं। इन अवशेषों का अभी तक विधिवत् अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया गया है। इनमें से अधिकांश अवशेष जो पवाया के निकटवर्ती क्षेत्र से ही प्राप्त हुए हैं ऐसे हैं, जो हिन्दुओं की प्राचीन संस्कृति पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। यदि पवाया के उस विस्तृत क्षेत्र का अनुमान लगाया जाय जिसमें ये अवशेष मिले हैं, तो उसका क्षेत्रफल लगभग दो वर्गमील होगा। इस ध्वंसावशेषपूर्ण क्षेत्रफल की तुलना विदिशा के निकट बेसनगर क्षेत्र से की जा सकती है।

इस सम्बन्ध में यह बात भी उल्लेखनीय है कि ये अवशेष सिंध और पार्वती नदी के संगम तक ही सीमित नहीं हैं, अपितु ये इन दोनों नदियों के तटों पर पर्याप्त दूरी तक बिखरे पड़े हैं। इससे यह अनुमान भी सहज ही लगाया जा सकता है, कि पार्वती और सिंध नदियों के संगम पर तो नगर का मुख्य भाग बसा होगा और नगर का विस्तार इन नदियों के किनारे-किनारे दूर तक रहा होगा। दो नदियों के संगम पर बसे नगरों की छटा प्रकृति का आश्रय पा कर बढ़ जाती है। पद्मावती भी एक भव्य नगरी रही होगी, जिसके सौन्दर्य का उल्लेख अन्यत्र किया जाता होगा।

प्रारम्भ में पद्मावती की स्थिति के विषय में इतिहासकारों में बड़ा विवाद बना रहा। कोई इतिहासकार इसे उज्जैन के निकट देखने का प्रयत्न कर रहा था, जैसा कि कोषकार ने पद्मावती के अर्थों में उज्जयिनी का एक प्राचीन नाम दिया है। किसी-किसी इतिहासकार ने पद्मावती को वर्तमान नरवर के निकट देखा। लम्बे समय तक यह विवाद चलता रहा, तब जा कर कहीं यह निश्चय किया जा सका कि पद्मावती वर्तमान पद्मपवाया का ही प्राचीन नाम था। पद्मावती के निश्चयात्मक परिचय के श्रेय के भागीदार अन्य साधन तो हैं ही, किन्तु उत्खनन कार्य के द्वारा इस विषय में बड़ी सहायता मिली। उत्खनन कार्य के द्वारा प्राप्त सामग्री के अभाव में इस बात की कल्पना तक नहीं की जा सकती थी, कि यह नगर इतना गौरवशाली और भव्य रहा होगा, जैसा कि अब प्रतीत होने लगा है।

उत्खनन के द्वारा कई इस प्रकार की वस्तुएँ मिली हैं, जिनसे पद्मावती के तत्कालीन समाज के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश पड़ता है। नागवंशीय शासकों ने जीवन में धर्म को

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बड़ा महत्वपूर्ण स्थान दिया था, इस बात को सिद्ध करने के लिए अब तक प्रचुर सामग्री प्राप्त हो चुकी है। मन्दिरों के अतिरिक्त अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ तथा शिवलिंग इस बात के साक्षी हैं, कि पद्मावती का राज्य एक धर्म-प्रधान राज्य था। राजा को भी अश्वमेध यज्ञ कर लेने के पश्चात किसी सम्मानपूर्ण पद की प्राप्ति होती थी।

मृण्मूर्तियों एवं अन्य प्राप्त मूर्तियों के आधार पर यह कहना स्वाभाविक प्रतीत होता है, कि इस काल में मूर्तिकला उत्कृष्टता की चरम परिणति पर पहुँच चुकी थी। मूर्तिकला ही क्यों, इस काल की स्थापत्य-कला के भी उच्च शिखर पर पहुँच जाने के पर्याप्त प्रमाण मिल जाते हैं। उस समय के ऊँचे-ऊँचे आलीशान भवन आज भी बड़े कौतूहल की वस्तु बने हुए हैं। इन स्थूल कलाओं के अतिरिक्त सूक्ष्म कलाओं के भी इस प्रकार के प्रमाण मिले हैं, जिनसे कलाओं की बहुमखी प्रगति का बोध होता है। संगीत और वाद्य-कला के तत्कालीन स्वरूप को प्रगट करने वाले एक ऐसे प्रस्तर खण्ड की प्राप्ति हुई है, जिससे संगीत, वाद्य और नर्तन के बहुप्रचलित होने का बोध होता है।

पद्मावती का तत्कालीन समाज कलाप्रिय रहा होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु इसके साथ-साथ पद्मावती एक वैभवशाली और धन-धान्य-सम्पन्न नगर था, इस बात को सिद्ध करने के लिए भी पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। इसके साथ ही देशी और विदेशी व्यापार के प्रमुख मार्ग पर स्थित होने के कारण यह नगर संस्कृति का एक केन्द्र बन गया था। व्यापारी वर्ग दूर-दूर तक इस नगर की प्रशंसा करता होगा। पद्मावती के ध्वंसावशेष इस नगर के प्राचीन स्वरूप को पुनर्निर्मित करने में पर्याप्त सहयोग प्रदान करते हैं।

४.१ संगृहीत वस्तुएँ

ध्वंसावशेषों की उक्त सामान्य चर्चा के उपरान्त अब हमें उन अवशेषों पर विचार करना चाहिए, जिनसे पद्मावती नगर की समृद्धि, तत्कालीन नागरिकों की सुरुचि एवं कलाप्रियता तथा संस्कृति पर प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार के अवशेषों में प्रमुख रूप से मानवाकार आकृतियाँ, मूर्तियाँ, स्तम्भशीर्ष एवं सिक्के विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पवाया के इस क्षेत्र में सिक्कों का मिलना आज भी बंद नहीं है। बरसात के दिनों में ये सिक्के धुल कर जमीन के ऊपर आ जाते हैं, ग्रामीण जन इन्हें बटोर लेते हैं। यह क्रम वर्षों से चल रहा है और आज भी बंद नहीं है। यह बात अवश्य है कि सिक्कों की मात्रा अब कम हो गयी है। सिक्के भी इस प्राचीन नगर की कहानी कहते हैं, उनका अपना पृथक महत्व है। वे अपने युग की समृद्धि के प्रतिनिधि हैं। सिक्के तो अधिकांशतः प्राचीन युगीन ही हैं, किन्तु स्थापत्य-कला और मूर्तिकला के जो अवशेष मिले हैं, वे ईसा की प्रथम शताब्दी से ले कर मध्ययुग तक का प्रतिनिधित्व करते हैं।

४.२ कुषाणों से पूर्व के स्मृति-चिह्न

कुषाण शासनकाल में हमें अधिकांशतः बौद्ध और जैन धर्मों के स्मृति-चिह्न मिलते हैं। उस समय का ऐसा कोई स्मृति-चिह्न नहीं मिलता, जो हिन्दू ढंग की सनातनी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उपासना से सम्बन्ध रखता हो। किन्तु इससे यह अनुमान नहीं लगाना चाहिए कि प्रारम्भ में कोई सनातनी चिह्न बने ही नहीं थे। वास्तविकता तो यह है कि बौद्धों से पूर्व भी सनातनी हिन्दू अपने स्मृति-चिह्न बनवाया करते थे। इन स्मृति-चिह्नों में भवन और मूर्तियों की गणना विशेष रूप से की जा सकती है। किन्तु पवाया के उत्खनन कार्य के समय बौद्धों से पूर्व का सनातनी हिन्दुओं का कोई स्मृति-चिह्न नहीं मिला, न ही कोई नमूना वास्तु तक्षण-कला का मिलता है। इस सम्बन्ध में अधिक सम्भावना तो इसी बात की प्रतीत होती है कि हिन्दुओं ने ऐसे स्मृति-चिन्ह बनवाये तो होंगे किन्तु कालान्तर में उन्हें नष्ट कर दिया गया होगा। सनातनी हिन्दुओं के भवन, मूर्ति तथा अन्य स्मृति-चिन्हों के निर्माण किये जाने के प्रमाण तो हमें कई पुस्तकों में प्राप्त होते हैं। इस सम्बन्ध में श्री वृन्दावन भट्टाचार्य को पुस्तक 'दि हिन्दू इमेजेज' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मन्दिर और देवी-देवताओं की मूर्तियों के निर्माण के सम्बन्ध में हमें मत्स्य पुराण से भी प्रमाण मिल जाते हैं। भारशिवों और कुषाणों से पूर्व ही सनातनी और हिन्दुओं की वास्तु कला तथा मूर्ति कला उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँच गयी थी। इस कला का राष्ट्रीय स्वरूप भी था। किन्तु यह भी स्मरण रखने योग्य है कि भारशिव और वाकाटकों के समय में उनका फिर से उद्धार होने लगा तो फिर वैसे अच्छे भवन नहीं बन पाये। प्राचीन भवनों की तुलना में ये घटिया प्रकार के सिद्ध हुए। बौद्धों और जैनों के स्तूपों आदि पर की नक्काशी से यह सिद्ध हो जाता है कि इन पर भारतीय वास्तु और मूर्ति कला का अत्यधिक प्रभाव है। उदाहरण के लिए बौद्ध और जैन स्तूपों आदि पर की गई नक्काशी में अप्सराओं के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता था। मथुरा के जैन स्तूपों पर नागार्जुनी कोंडा स्तूपों तथा इसी प्रकार के और अनेक भवनों आदि पर ऐसी मूर्तियाँ मिलती हैं जिनमें अप्सरायें अपने प्रेमी गंधर्वों के साथ अनेक प्रकार की प्रेम-क्रीड़ा करती दिखायी गयी हैं। अप्सराओं की प्रेम-क्रीड़ा को जैन और बौद्ध धर्म में कोई स्थान नहीं है। हाँ, हिन्दुओं की धर्म पुस्तकों में और विशेष कर मत्स्य पुराण में इनको विशेष स्थान मिला है। मत्स्य पुराण में अठारह आचार्यों के मत उद्धृत किये गये हैं। इससे इस बात का पता लगाया जा सकता है कि हिन्दुओं में यह प्रथा अति प्राचीन काल से चली आ रही थी। हिन्दुओं के मन्दिर और तोरणों पर गंधर्व-मिथुन या गंधर्व और उसकी पत्नी की मूर्तियाँ होनी चाहिए। इस विषयक मत्स्य पुराण का उल्लेख देखिये :—

तोरणान् चोपरिष्टात् तु विद्याधर समन्वितम्
देव दुन्दुभि-संयुक्त गंधर्व मिथुनान्वितम्।
मत्स्य पुराण २५७, १३–१४

मन्दिरों पर अप्सराओं, सिद्धों और यक्षों आदि की मूर्तियाँ नकाशी गयी होंगी। मथुरा में भी स्नान करती हुई स्त्रियों की अनेक मूर्तियाँ मिली हैं। यह अनुमान लगाना अस्वाभाविक नहीं कि इन मूर्तियों की अनेक बातें अप्सराओं की-सी हैं तथा स्नान करने की भाव-भंगिमा के कारण ये जल-अप्सरा-सी प्रतीत होती हैं। बौद्ध और जैनों की गजलक्ष्मी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और गरुड़ ध्वज धारण करने वाली वैष्णवी भी सनातनी हिन्दू इमारतों से ली गयी हैं। जैन और बौद्ध मन्दिरों में इन मूर्तियों के आ जाने का एकमात्र कारण यही प्रतीत होता है कि कलाकार इनको बनाने के इतने इच्छुक हो गये थे कि वे इन्हें यथासम्भव स्थान देने का लोभ संवरण नहीं कर सकते थे। एक दूसरी बात और, जिस समय जैनों और बौद्धों के ये मन्दिर बने उस समय इन मूर्तियों का इतना अधिक प्रचार हो गया था कि कोई भी भवन तब तक पवित्र नहीं समझा जाता था जब तक कि उनमें इन मूर्तियों का समावेश न हो जाय। हिन्दुओं के लिए तो ये मूर्तियाँ वैदिक युग से चली आ रही थीं।

४.३ माणिभद्र यक्ष

पवाया में प्राप्त मानवाकार मूर्तियों में माणिभद्र यक्ष की मूर्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह मूर्ति पवाया के निकट किले के मुख्य द्वार के समीप ही एक खेत में पड़ी मिली थी। बताया जाता है कि इसे किसी किसान के हल ने पलट दिया था। यह मूर्ति बलुए पत्थर की बनी है। इसे माणिभद्र यक्ष के उपासकों ने बनवाया था। विशाल मूर्ति गोल आधार पर खड़ी की गयी है। इसके पैर से गर्दन तक की ऊँचाई चार फुट दस इंच है। मूर्ति का सिर अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है। इसके अतिरिक्त भी मूर्ति कई स्थानों से खंडित हो गयी है। दाहिना हाथ केवल कुहनी तक है, शेष टूटा है और अप्राप्य है। हाथ की जैसी आकृति बनायी गयी है उससे एक बात स्पष्ट हो जाती है कि दाहिना हाथ कुहनी तक मुड़ा हुआ था, बाँया हाथ नीचे लटक रहा है, इसी में कोष की थैली है। यक्ष संपत्ति और समृद्धि के अधिष्ठाता थे। माणिभद्र यक्ष भी धन-धान्य के भण्डारी के रूप में प्रतिस्थापित किये गये थे।

माणिभद्र यक्ष की मूर्ति तत्कालीन मूर्तिकला का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। मूर्तिकला की उत्कृष्टता को दर्शाने वाले सूक्ष्मतम चिह्नों में यक्ष की ग्रीवा के चारों ओर के चर्म को प्रदर्शित करने वाली रेखाओं को लिया जा सकता है। चर्म का एक दूसरा लपेट छाती पर भी बताया गया है। माणिभद्र यक्ष की पोशाक तत्कालीन वेशभूषा का एक उदाहरण प्रस्तुत करती है। यक्ष धोती और उत्तरीय पहने है। उसका दूसरा वस्त्र हैं अँगोछा। धोती की निचाई तो घुटने तक आती है और कमर पर साधारण पट्टी की गाँठ जैसी लगी प्रतीत होती है। कपड़े की लपेट दोनों टाँगों के बीच में हो कर जाती है। इसको आगे और पीछे दोनों ओर से देखा जा सकता है। चित्र में यक्ष के आगे का और पीछे का दोनों ओर का भाग दिखाया गया है। अँगोछा अथवा जिसे उत्तरीय भी कहा जा सकता है, का एक छोर तो दाहिनी भुजा पर लपेटा गया है। दूसरा छोर पर्तों में पीछे लटक रहा है। मूर्तिकला की सूक्ष्मता तो इस बात में है कि वस्त्रों के साथ-साथ यक्ष के यज्ञोपवीत पहनने के चिन्ह भी स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे हैं। यज्ञोपवीत छाती के दाहिने भाग से पेट के बाँये भाग तक पहुँच रहा है। साथ ही मूर्ति आभूषण रहित भी नहीं है। गले में एक हार है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें मोती गुँथे हुए हैं। यह पीछे की ओर भी लटकता हुआ दीख रहा है। दाहिनी भुजा में भुजबन्द

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पहने हुए है और बाँयीं कलाई में कंगन जैसा कोई आभूषण है। माणिभद्र यक्ष की प्रतिमा को देखने के पश्चात ऐसा विचार बनता है कि यह किसी कठोर स्वभाव वाले बलिष्ठ व्यक्ति की हो। इसे देख कर कोमल भावों की कल्पना नहीं की जा सकती, यद्यपि यक्ष धन का भण्डारी और जन-जन पर दया की वर्षा करने वाला देवता है।

माणिभद्र यक्ष की चरण-चौकी पर एक महत्वपूर्ण अभिलेख अंकित है। जिस भाग पर यह अभिलेख उत्कीर्ण किया गया है उसकी लम्बाई एक फुट नौ इंच और चौड़ाई नौ इंच मात्र हैं। इस प्रकार खण्ड का ऊपरी भाग तनिक खण्डित है। परिणामस्वरूप ऊपर की पंक्ति के अक्षरों के ऊपर लगने वाली मात्राएँ या तो मिट गयी हैं, या कुछ धूमिल और अस्पष्ट हो गयी हैं। इसी कारण प्रथम पंक्ति के अक्षरों को सही-सही पढ़ लेने में कुछ कठिनाई उपस्थित हो गयी है। यह अभिलेख ब्राह्मी लिपि तथा संस्कृत भाषा में है। लिपि के आधार पर इतिहासकारों ने इस अभिलेख का समय ईसा की प्रथम अथवा द्वितीय शताब्दी निर्धारित किया है। मूर्तिकला के नमूने से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। यह अभिलेख कुल मिला कर छः पंक्तियों में है। यह गद्य में लिखा गया है। इस अभिलेख की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें इस बात का उल्लेख भी किया गया है कि यह कब स्थापित किया गया था। इतिहासकार के लिए तो यह बहुत बड़ी बात है। ऐतिहासिक तथ्यों के ठीक-ठीक उल्लेख के लिए तो यह एक ठोस प्रमाण है। बताया गया है कि शिवनंदी राजा के शासन के चौथे वर्ष में एक समिति के सभासदों ने देवता की तुष्टि हेतु ग्रीष्म के द्वितीय पक्ष की द्वादशी को इस प्रतिमा की स्थापना की थी। इसकी स्थापना किसी एक धनवान व्यक्ति ने नहीं कर दी, अपितु इसके लिए अनेक व्यक्तियों ने दान दिया था। यही कारण है कि इस अभिलेख के अन्त में इष्टदेव से उन व्यक्तियों के कल्याण के लिए अर्चना की गयी है जिन्होंने इसके लिए दान दिया था। इतना ही नहीं इससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि कल्याण की कामना के साथ-साथ उन दानवीरों की यश गाथा भी गायी गयी है जिन्होंने इसके लिए दान दिया। इसमें इन धन-दाताओं के नामों का भी उल्लेख है।

इस अभिलेख का पाठ नीचे दिया जा रहा है। श्री भो० वा० गर्दे ने कुछ अस्पष्ट अथवा मिटे हुए अक्षरों की रचना अपने अनुमान से की है, जानकारी के लिए उन रूपों को कोष्ठक के अन्तर्गत रखा गया है। इसका पाठ पंक्ति के अनुसार दिया जा रहा है।

प्रथम पंक्ति

(रा) ज्ञः श्वा (मि) शिव (न) न्दिस्य संव (त्स) रे चतु (ं) ग्र (ी) षम पक्ष (ॅ) द्विवतीयेर (f) दवस (ॅ)

द्वितीय पंक्ति

द्व (ा) द (शे) १०२ यतस्य पूर्वाय (ॅ) गोष्ठ्या माणिभद्र भक्ता गर्भसुखिता भगवतो।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तृतीय पंक्ति

माण (ि) भद्रस्य प्रतिमा प्रतिष्ठापयति गोष्ठ्याम् भगवा आयु वालम् वाचम कल्य (ा) शाम्यु

चतुर्थ पंक्ति

दयम् व प्रीतो दिसतु (व) ब्राह्मणस्य गौतमस्य क (मा) रस्य ब्राह्मणस्य रुद्रदासस्य शिव (त्र) दाये (इस पंक्ति में गौतमस्य शब्द पंक्ति से ऊपर लिखा गया है)

पंचम पंक्ति

शमभूत (ि) स्य ज (ो) वस्य खम् (जबल) स्य शिव (ने) मिस (य) शिवभ (द्र) स्य (कु) मकस्य धनदे

छठी पंक्ति

वस्य दा ।

यह अभिलेख राजा शिवनंदी के समय का अच्छा और विश्वसनीय प्रमाण प्रस्तुत करता है । माणिभद्र यक्ष की मानवाकार मूर्ति ईसा की पहली-दूसरी शताब्दी में एक जन-समुदाय के द्वारा यक्ष की स्थापना से इस बात की पुष्टि होती है कि तत्कालीन समाज में यक्ष उपासना बहु-प्रचलित थी । प्राचीन ग्रन्थों में यक्ष को धन का भण्डारी कुबेर बतलाया गया है । पवाया में प्राप्त इस प्रतिमा के हाथ में एक थैली है । यक्ष-पूजा का एकमात्र आशय होता है उसकी उपासना के द्वारा धन-धान्य की प्राप्ति । नागों के अन्य राज्यों में भी यक्ष और यक्षिणियों की पूजा की प्रथा थी । मथुरा में भी यक्ष की मूर्तियाँ मिली हैं, जिससे इसी तथ्य की पुष्टि होती है कि मथुरा और पद्मावती की धार्मिक पृष्ठ-भूमि का आधार एक ही है ।

एक जन-समुदाय के द्वारा यक्ष की प्रतिमा के प्रतिस्थापन से सिद्ध होता है कि तत्कालीन समाज में जन-सहयोग की भावना सुदृढ़ थी । राजा के कार्यों में प्रजा का पूर्ण सहयोग होता था । राजा के समस्त कार्यों के पीछे जन-कल्याण की भावना विद्यमान रहती थी । शासन का स्वरूप धर्म-प्रधान होने के साथ-साथ जन-कल्याण-प्रधान भी था । जनता में राज्यों के कार्य के लिए पूर्ण उत्साह था । ऐसे व्यक्तियों का नाम जो सामाजिक कार्यों में सहायता देते थे विशिष्ट सूची में अंकित किया जाता था । ये समाज के आदर्श व्यक्ति समझे जाते थे, समाज में उनकी प्रतिष्ठा थी ।

डॉ० कृष्णदत्त वाजपेयी ने मथुरा में प्राप्त यक्ष-मूर्तियों के सम्बन्ध में जो विवरण प्रस्तुत किया है (देखिये 'मथुरा', पृष्ठ ३५) उससे इस बात की पुष्टि होती है कि मथुरा और पद्मावती की संस्कृतियों में कोई बड़ा भारी अन्तर नहीं था । मथुरा में तो इसके अतिरिक्त किन्नर, गंधर्व, सुपर्ण तथा अप्सराओं की भी अनेक मूर्तियाँ मिली हैं । ये सभी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

देवी-देवता सुख, समृद्धि और विलास के प्रतिनिधि हैं। नृत्य, संगीत और सुरापान ही इनके प्रिय विषय हैं। संगीत और नृत्य के दृश्य को प्रस्तुत करने वाली एक ऐसी मूर्ति पवाया से मिली है जिसमें वाद्य के विविध प्रकार भी बताये गये हैं। संगीत समारोह का यह अनुपम दृश्य बड़ा आकर्षक प्रतीत होता है। मथुरा-कला में भी गायन और वादन के ऐसे चित्र मिल जाते हैं, जिनसे इन दोनों स्थानों की समान संस्कृति का आभास होने लगता है।

परखम में यक्ष की जो विशालकाय मूर्ति मिली है उसकी तुलना पवाया के माणिभद्र यक्ष की मूर्ति से की जा सकती है। ऐसी ही एक अन्य मूर्ति मथुरा के बड़ोदा गाँव से प्राप्त हुई थी। इन मूर्तियों के बनाने में मूर्तिकला की उत्कृष्टता तो इसी बात में है कि इन्हें चारों ओर से देखा जा सकता है। इन मूर्तियों को कोर कर बनाया गया है।

माणिभद्र यक्ष की मूर्ति और मथुरा की कुबेर यक्ष की मूर्तियों में अद्भुत समानता है। उस काल में कुबेर की उपासना तो इतनी लोकप्रिय हो चुकी थी कि हिन्दुओं के अतिरिक्त जैन और बौद्ध धर्मावलम्बी भी कुबेर को पूजने लगे थे। कुबेर के हाथ में सुरा-पात्र, बिजोरा-नीबू, तथा रत्नों की थैली पायी जाती है। माणिभद्र यक्ष के हाथ में भी इसी प्रकार की एक थैली है।

मथुरा और पद्मावती की यक्ष मूर्तियाँ दोनों राज्यों की समान राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों की बोधक हैं। धन का भण्डारी कुबेर यदि मथुरा में धन-सम्पत्ति की वृद्धि कर रहा था तो उसका सहोदर माणिभद्र पद्मावती में सुख और समृद्धि को बढ़ा रहा था।

४.४ मानवाकार नन्दी

पवाया के निकट जितने अवशेष प्राप्त हुए हैं, उनमें से अधिकांश प्राचीन काल के हैं—नाग शासन के स्मृति-चिन्ह। जिस टीले पर ताड़-स्तम्भशीर्ष मिला था उससे कुछ ही दूरी पर कुछ अन्य आकृतियाँ मिली हैं जो बेलबूटेदार हैं। ये आकृतियाँ गुप्तकालीन मूर्तिकला से समानता रखती हैं। कुछ अन्य मूर्तियाँ जो गुप्तकालीन कला के नमूने प्रतीत होती है पवाया के ग्रामीणजनों ने गाँव के उत्तर में एक कच्चे चबूतरे पर संकलित की हैं। ये सभी मूर्तियाँ गाँव के आस-पास से ही संकलित की गयी हैं। इनमें से एक मूर्ति एक माता और शिशु की है जोकि एक मंच पर आसीन है। यह मूर्ति बेसनगर के संग्रहालय में रखी सात माताओं की मूर्तियों से समानता रखती है। इन्हीं मूर्तियों में से एक नन्दी की मूर्ति भी उल्लेखनीय है। नन्दी का सिर तो साँड़ का-सा है किन्तु धड़ मानवाकार है। यह मूर्ति चारों ओर कोरकर बनायी गयी है। नन्दी की मूर्ति नागकालीन है। वायु पुराण में वेदिश नागों को शिव का साँड़ अथवा नन्दी कहा है। यथा, वृषान् वेदिश-कांश्चापि भविष्यांश्च निबोधत—२-३०-३६०। नागों के सिक्कों में भी साँड़ के चिन्ह पाये जाते हैं। नन्दी की मूर्ति सम्भवतः शिव के सामने उसके वृषत्व को प्रकट करने के लिए खड़ी की गयी होगी, ऐसा अनुमान करना असंगत प्रतीत नहीं होता। यह मूर्ति भी नागकालीन कला का अच्छा नमूना प्रस्तुत करती है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मानवाकार नन्दी की कल्पना एक मौलिक कल्पना है। वृष, साँड़, नन्दी अथवा बैल को मानवीय आकृति द्वारा प्रकट करने का तात्पर्य है, शिव के इस वाहन को मानव मान कर उसकी उपासना करना। ऐसी स्थिति में जब नागवंशीय शासक स्वयं को शिव का नन्दी समझते हों, नन्दी को इस रूप में अभिव्यक्त करना और भी युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

नन्दी को मानव के रूप में चित्रित करने का अर्थ होगा इस प्राणी में सभी मानवीय गुणों का आरोप करना। प्राणियों में मानव की कल्पना एक मानवोचित गुण है। नन्दी मानव की उसी प्रकार सहायता करने वाला प्राणी बन जाता है जिस प्रकार कोई मनुष्य कर सकता हो। उसमें मानव के ही नहीं उसके स्वामी शिव के गुणों का भी समावेश हो जाता है। नन्दी मानव है। उसे मानव के सभी दुःख दर्दों का आभास होगा। नन्दी को मानव के रूप में चित्रित करने में यह भावना अवश्य बनी रही होगी।

तत्कालीन धार्मिक प्रवृत्ति की जड़ें कितनी गहरी थीं तथा उसका भावी समाज पर कितना प्रभाव पड़ा इसका अनुमान इस तथ्य के द्वारा लगाया जा सकता है कि आज भी नन्दी को एक विवेकशील प्राणी माना जाता है, जोकि व्यक्तियों के जीवन और भाग्य के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करने में समर्थ है। इस विश्वास को जब मानवाकार नन्दी के परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है तो नागों के द्वारा चित्रित मानवाकार नन्दी की सार्थकता का आभास हो जाता है। मानवाकार नन्दी की उपासना निराधार नहीं रही होगी।

४.५ उत्कृष्ट कलाकृतियाँ : मृण्मूर्तियाँ

पद्मावती में प्राप्त नागयुगीन मृण्मूर्तियाँ जोकि विष्णु मन्दिर में मिली हैं, मिट्टी की मूर्तियाँ बनाने की कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये मूर्तियाँ किसी साँचे में ढाली गयी होंगी। इसका अर्थ यह हुआ कि उस समय तक साँचे बनने लगे होंगे जिनका उपयोग मूर्तियों के बनाने में किया जाता होगा। ये मूर्तियाँ स्त्री-पुरुष, देवियों और पशु पक्षियों की हैं। स्त्रियों की मूर्तियों में उनका केश-विन्यास विशेष रूप से उल्लेखनीय है, देखने में सभी मूर्तियाँ बड़ी मनमोहक प्रतीत होती हैं। मानव-मूर्तियों में अन्य विशेषताओं के अतिरिक्त मन के भाव मुख-मंडल पर उभर कर आ रहे हैं यह देखते ही बनता है। कुछ मूर्तियों के मुख पर हास्य का भाव सहज ही पढ़ा जा सकता है। साथ ही कुछ मूर्तियाँ शोक-संतप्त हृदय के भावों को अन्तरतम में छिपाये हुए प्रतीत होती हैं। आश्चर्य तो इस बात का है कि मिट्टी से बनी ये मूर्तियाँ मानवोचित भावों का कितना सफल चित्रण करती हैं, क्या यह विचारणीय बात नहीं है ? मानवोचित भावों के चित्रण में तो आज बीसवीं शताब्दी का कलाकार भी, यदि वह पारंगत नहीं है तो चकरा जायेगा। पुरुषों की तुलना में स्त्री मूर्तियों में अधिक वैविध्य है। इस युग में केशविन्यास के विषय में कितना वैविध्य विद्यमान था, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। स्त्रियों के लिए यह एक विशेष सौन्दर्य प्रसाधन का युग रहा होगा।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पद्मावती की इन मृण्मूर्तियों की तुलना राजघाट (काशी) एवं अफगानिस्तान के प्राचीन 'कपिशा' के स्थान पर प्राप्त इसी प्रकार की केशविन्यास वाली मूर्तियों से की जा सकती है। राजघाट में प्राप्त इन मूर्तियों के विषय में डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' वर्ष ४५, पृष्ठ २१५-२२६ में विस्तारपूर्वक चर्चा की है। कपिशा की मृण्मूर्तियों के केशकलाप के सम्बन्ध में महापंडित राहुल सांकृत्यायन का कथन दृष्टव्य है—"एक जगह (काबुल के संग्राहलय में) पचासों स्त्री-मूर्तियों के सिर रखे थे। उनमें पचासों प्रकार से केशों को सजाया गया था, और कुछ सजाने के ढंग तो इतने आकर्षक और बारीक थे कि मोशिये मोनिये (फ्रांसीसी राजदूत) कह रहे थे कि इनके चरणों में बैठ कर पेरिस की सुन्दरियाँ भी बाल का फैशन सीखने के लिये बड़े उल्लास से तैयार होंगी।"[१] किन्तु पवाया में प्राप्त ये मृण्मूर्तियाँ इन दोनों स्थानों पर प्राप्त मृण्मूर्तियों से कहीं अधिक उत्कृष्ट हैं। इसका एकमात्र कारण यही प्रतीत होता है कि पद्मावती तत्कालीन भारत का प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्र थी जहाँ संस्कृतियों का समागम होता था।

देवी-देवताओं की मूर्तियों के अन्तर्गत एक मूर्ति चतुर्भुज ब्रह्मा की बहुत सुन्दर बन पड़ी है। किसी सिंहवाहनी देवी (पार्वती) का नीचे का भी भाग मिला है। पशुओं में अश्वों की मूर्तियाँ बड़ी सजीव बन पड़ी हैं। किसी-किसी घोड़े पर सवार भी अंकित किया गया है। भारतीय मूर्तिकला में हाथी के अंकन को विशेष महत्व मिला है किन्तु पद्मावती में अश्वों के चित्रों को देख कर भारतीय चित्रकला के सम्बन्ध में यह भ्रान्ति कि उसमें हाथी को विशेष महत्व मिला है, बहुत कुछ अंश में असिद्ध हो जाती है। पशु-पक्षियों में विशेषकर तोता, कपोत, मोर, मछली, वराह और वानर की मूर्तियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। एक ऐसे वानर की मूर्ति भी मिली है, जो गले में माला डाले हुए है। इस मूर्ति को देख कर कुषाणकालीन उस कच्छप जातक का सहज ही स्मरण हो आता है, जो मथुरा संग्रहालय में है और जिसका उल्लेख डॉ० कृष्णदत्त वाजपेयी ने अपनी 'मथुरा' नामक पुस्तक में किया है।

पद्मावती में प्राप्त मृण्मूर्तियों की तुलना मथुरा संग्रहालय की मृण्मूर्तियों से की जा सकती है। जिस प्रकार मथुरा-कला में विविध धर्मों के देवी-देवताओं की मूर्तियाँ मिली हैं वैसी ही मूर्तियाँ पद्मावती में भी प्राप्त हुई हैं। इन मूर्तियों का सम्बन्ध प्रधान रूप से लोक-जीवन से है। देवी-देवता भी विशेषकर हिन्दू-धर्म के हैं। साथ ही ग्रामीण और लोक-जीवन पर प्रकाश डालने वाली अनेक मूर्तियाँ मिली हैं। इसका कारण यही है कि जीवन का यह पक्ष जनसाधारण के लिए बड़ा बोधगम्य था। मथुरा में इस प्रकार की मूर्तियों के प्राप्ति स्थान या तो टीले हैं अथवा यमुना नदी। रचना-कौशल के आधार पर इन मूर्तियों को दो वर्गों में रखा जा सकता है। पहले वर्ग में देवी-देवताओं की वे प्राचीन मूर्तियाँ

---

१. 'सोवियत भूमि', पृष्ठ ७४७ का कथन—मध्य भारत का इतिहास पृष्ठ ६३३-३४ पर उद्धृत।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आती हैं जो हाथ से गढ़ कर बनायी गयी होंगी। दूसरे वर्ग में उन मूर्तियों को रखा जा सकता है जिनके बनाने में किसी साँचे का प्रयोग किया गया होगा।

इन दोनों स्थानों के देवी-देवताओं और लोक-जीवन चित्रित करने वाली मूर्तियाँ तो निर्विवाद रूप से उत्कृष्ट हैं, किन्तु ऐसी मूर्तियाँ भी जो बच्चों के खेलने के लिए खिलौने के रूप में बनायी गयी हैं उनमें भी कलाकारों की कलाप्रियता का आभास मिल जाता है। भारतीय कला में हाथी और घोड़े का विशेष स्थान है। इन दोनों प्राणियों की मूर्तियाँ मथुरा और पद्मावती में सम्पन्न रूप से पायी जाती हैं। इन दोनों स्थानों पर ऐसी मूर्तियाँ भी मिलती हैं जो किसी भाव-विशेष के प्रदर्शन के लिए बनायी गयी हों। जैसे रोते हुए बालक का चित्र। माँ गोद में बच्चे को ले कर दुलार कर रही है। कुछ मूर्तियाँ ऐसी हैं जिनमें राजसी ठाट-बाट में एक स्त्री पंखा लिये खड़ी है। पत्थर पर जिस प्रकार की उत्कृष्ट मूर्तियाँ बनायी जा सकती हैं वैसी ही मिट्टी से बनी ये मूर्तियाँ जीवन के आकर्षक पक्ष का प्रदर्शन करती हैं। कोई राजकुमार रथ पर बैठ कर बाहर जा रहा है। किसी मूर्ति में एक सुन्दर स्त्री साड़ी पहने दिखायी गयी है और बच्चे को गोद में लिये खड़ी है। मथुरा में भी ऐसी मूर्तियाँ मिलती हैं, जिनमें स्त्रियों के केशों को विविध प्रकार से सजाया गया है। ऐसी ही मूर्तियाँ पद्मावती में भी मिलती हैं। एक मूर्ति तो मथुरा में ऐसी भी मिली है, जिसमें पुरुषों के केशों को सँवारने की झाँकी मिल जाती है। स्त्रियों और पुरुषों के केशों को सँवारने की कौन-सी विधियाँ प्रचलित थीं इसकी स्पष्ट झलक हमें मृण्मूर्तियों के द्वारा मिल जाती है। मथुरा और पद्मावती की एक ही प्रकार की मूर्तियाँ समकालीन होनी चाहिए। दोनों स्थानों की समान प्रकार की मूर्तियाँ समान सामाजिक और कलात्मक अभिरुचि का बोध कराती हैं।

४.६ संगीत समारोह का एक अनुपम दृश्य

पवाया के मन्दिर के तोरण पर अनेक पौराणिक आख्यानों का अंकन धार्मिक भावना से ओत-प्रोत हो कर किया गया होगा। यह नृत्य और गायन-वादन का एक अद्भुत संगम प्रस्तुत करता है। भगवान के भजन में एकाग्रचित्त होने और मन को रमाने के लिए इन साधनों की आवश्यकता समझी गयी होगी। मन्दिर के गाने-बजाने का यह दृश्य एक प्रस्तर खण्ड पर अंकित है। यह प्रस्तर खण्ड चार वर्गफुट वर्गाकार आकृति का है। अब जिस रूप में प्राप्त हुआ है, उसमें ऊपर की ओर का बायाँ कोना तनिक खण्डित हो गया है।

इस दृश्य के मध्य में एक आह्लादित स्त्री की मूर्ति है, जिसका भाव-भंगिमापूर्ण नर्तन मन को मोह लेता होगा। उसके उरोजों पर एक लम्बा वस्त्र बँधा हुआ है जिसका छोर एक ओर लटक रहा है। इस मूर्ति के दोनों हाथों में चूड़ियाँ हैं। अन्तर केवल इतना है कि दाहिने हाथ में चूड़ियों की संख्या बहुत कम है, लगता है दो-चार चूड़ियाँ ही होंगी किन्तु बायाँ हाथ कलाई से कुहनी तक चूड़ियों से भरा हुआ है। इसका कारण सम्भवतः दायें हाथ की उपयोगिता ही रही होगी। काम-धन्धे में दाहिने हाथ का प्रयोग विशेष रूप से होता है, अतएव उसे आभूषणों के गुरु भार से मुक्त रखा गया है। इसे देख कर लगता है कि जीवन की वास्तविकताओं का प्रतिबिम्ब तत्कालीन कला में अपनी सार्थकता के साथ अवतरित हुआ

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इस नर्तकी का एक अन्य वस्त्र उसकी साड़ी अथवा अधोवस्त्र है। इसके दोनों ओर अलंकरणार्थ किंकणियों की झालर लटक रही है। इसके पैरों में तनिक मोटे और भारी चूड़े हैं, जिनमें कोई सजावट नहीं दिखाई देती। वह कानों में झुमकीदार कर्णाभूषण भी पहने हुये है।

दृश्य में अंकित अन्य मूर्तियों की वेशभूषा और आभरणों पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि नर्तकी को जिस लगन और सूक्ष्मता से सजाने-सँवारने का प्रयत्न किया गया है, उतनी सावधानी अन्य गायिका अथवा वादिका स्त्रियों के अलंकरण में नहीं बरती गयी है। मध्य नर्तकी के चारों ओर नौ अन्य स्त्रियाँ हैं जो गाने-बजाने में तल्लीन हैं। ये स्त्रियाँ अपनी विशेष आसन्दियों पर बैठी दिखायी गयी हैं। इनके वाद्य भी विविध प्रकार के हैं। जैसे दो तारों के वाद्य। समुद्रगुप्त की वीणा पर एक वीणा का चित्र अंकित मिलता है। इनमें से एक वाद्य उस चित्र से मेल खाता है। उस समय ढपली भी एक सामान्य वाद्य रहा होगा। एक स्त्री को ढपली बजाते हुए दिखाया गया है। इनमें से एक स्त्री की मुद्रा के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। अनुमानतः वह या तो पंखा लिये हुए है अथवा चमर डुला रही है। एक अन्य स्त्री मंजीर बजाने में तल्लीन है। उसके बगल में एक अन्य स्त्री है जो वाद्यविहीन अंकित की गयी है। उसके पास ही एक स्त्री मृदंग बजा रही है। पास ही कोने की मूर्ति खण्डित है। उसके निकट ही एक अन्य स्त्री है जो वेणु बजा कर भावविह्वल-सी प्रतीत हो रही है। चित्र के मध्य में दीपक प्रकाशित हो रहा है। दीप और नैवेद्य मन्दिर के लिए आवश्यक हैं। इन स्त्रियों की वेशभूषा और वाद्यों की विविधता के साथ ही इनके केशविन्यास पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। किन्हीं भी दो स्त्रियों का केशविन्यास एक जैसा प्रतीत नहीं होता। इस प्रकार के केशविन्यासों के विविध प्रकार हमें मृण्मूर्तियों में भी मिलते हैं।

मध्यदेश की संगीत तथा अन्य कलाओं की साधना किस सीमा तक पहुँच चुकी थी, उसका बड़ा मार्मिक चित्रण हमें इस अनुपम कलाकृति से मिल जाता है। केवल नृत्य, गीत और वाद्य के प्रयोग से ही इस युग के मध्यदेशवासी के मानस में कल्लोलित स्वर-वैभव मुखर नहीं हुआ, उसकी यह लालित्य साधना की प्रवृत्ति मात्र तूली के मृदु माध्यम से ही नहीं व्यक्त हुई, परुष पाषाण पर छेनी के आघातों से भी लिखी गयी। पद्मावती में प्राप्त तोरण के प्रस्तर खण्ड में भी उसने उस पर खचित संगीतपरायणा बाला के अमर्त्य स्वर-संधान से अपनी तृप्ति की। जिसकी नृत्य मुद्राएँ भावुकों की घनीभूत अनुरक्ति के कारण पाषाण की हो गयी। उस काल के मध्यदेश की स्वर-साधना इस शिला खण्ड में अंकित वाद्य-पुंज से तरंगित हो रही है। आज भी तत्कालीन संगीत युग की वेणु, वीणा, धनुर्वीणा, कांस्यताल आदि की समन्वित स्वर-मूर्च्छना पार्थिवता का प्राणिधान अनिर्वचनीय आनन्दानुभूति में कर रही है।

तत्कालीन युग के मध्यदेश के निवासी ने युद्ध-भूमियों में उत्कृष्ट सफलता प्राप्त करने के पश्चात जिन वाद्यों से अपना विजय नाद किया था उसका हर्षोल्लास आज भी इस शिला खण्ड से सुनाई देता है। उस समाज की नादब्रह्म की आराधना की सीधी अभिव्यक्ति

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

करने वाले अन्य कला के इन अभिप्रायों के अतिरिक्त इनसे इतर अभिप्राय भी उस स्वर-संघात की ही उपज हैं, जो इस प्रदेश के निवासी के हृदय में गूँज रहा था जिससे उसने इन निर्माणों की प्रेरणा ग्रहण की और जिनकी ललित मुद्राएँ इस युग की साज-संगीत साधना की मूर्तिमयी मूर्च्छनाएँ हैं।

४.७ विष्णु-मूर्ति

पवाया में जो विष्णु की मूर्ति मिली है उसमें चार भुजाएँ हैं। नीचे का दाहिना हाथ अभय-मुद्रा का सूचक है और ताड़ पर अंकित पद्म ग्रहण किये हुए है। ऊपर का दाहिना हाथ गदा को ग्रहण किये हुए है। ऊपर के बायें हाथ में चक्र है। यह हाथ ऊँचा उठा हुआ है। नीचे वाले बायें हाथ में शंख है। इस मूर्ति के सिर पर मुकुट है। किन्तु सिर और मुख दोनों ही विखण्डित हो गये हैं। इस मूर्ति के शरीर पर आभूषण भी हैं। गले में हार सुशोभित है और हाथों में कंगन। कमर में फेंटा बँधा हुआ है और एक अँगोछा पहने हुए हैं जो बायें कन्धे से ले कर दोनों जाँघों पर होकर जाता है। इस मूर्ति की पूरी टाँगें नहीं मिल पायी हैं, केवल घुटने तक का ही भाग उपलब्ध है। विष्णु की इस मूर्ति के विषय में यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि खुदाई में जो विष्णु मन्दिर मिला है यह मूर्ति उसी मन्दिर की होगी। यह मूर्ति विष्णु की उपासना के प्रचलन को तो सिद्ध करती ही है साथ ही यह तत्कालीन मूर्तिकला का एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती है। इस मूर्ति के द्वारा नागकालीन मूर्तिकला की उत्कृष्टता सिद्ध हो जाती है।

तत्कालीन समाज में शिव की उपासना को अधिक मान्यता मिली थी, किन्तु विष्णु की उपासना करने वाले भी अनेक भक्त थे, विष्णु मन्दिर की यह मूर्ति यही सिद्ध करती है। गुप्तकाल में तो विष्णु की अत्यधिक उपासना की गयी थी। विष्णु-लोक का भरण-पोषण करने वाले देवता हैं। देवता ही क्यों अन्य सभी देवताओं के राजा हैं। सीधे तन कर खड़े हो जाते हैं। वे अच्छे वस्त्र और आभूषण पहनते हैं। अपनी प्रजा के राज्य पर वीरतापूर्वक शासन करते हैं। युद्ध में उनका कोई सामना नहीं कर सकता। सुदर्शन चक्र उनके साम्राज्य का लक्षण है। चक्र के ही द्वारा उन समस्त दुष्ट शक्तियों को तहस-नहस कर दिया जाता है जो विष्णु के साम्राज्य पर आक्रमण करने का साहस करें। उनके हाथ का शंख विजय की घोषणा करने वाला है। गदा शासन के दण्ड का कार्य करती है। राज्य की कोई आन्तरिक शक्ति कभी राजा के विपरीत कार्य नहीं कर सकती। एक हाथ में कमल इस बात का सूचक है कि प्रजा में धनधान्य सम्पन्नता और आनन्द की वृद्धि हो।

पद्मावती पर गुप्त साम्राज्य की स्थापना हो चुकी थी। प्रजा में विष्णु के प्रति अत्यधिक आस्था जग चुकी थी। समुद्रगुप्त ने विष्णु की उपासना राजसी देवता के रूप में की थी। विष्णु के प्रति उसकी भक्ति को देख कर ऐसा प्रतीत होता है, कि जैसे स्वयं उसका व्यक्तित्व ही विष्णु में विलीन हो गया हो। यह भी कहा जा सकता है कि जितनी श्रद्धा राजा की विष्णु में रही होगी, उससे कम प्रजा में भी न होगी। विष्णु की भक्ति न केवल तत्कालीन धार्मिक और आध्यात्मिक चिन्तनशील समाज का चित्र प्रस्तुत करती है वरन् यह

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तत्कालीन समाज की सुख और सौरभ सम्पन्नता की भी सूचक है। जिस काल में पद्मावती में विष्णु की उपासना की जाती थी उस काल में यह राज्य सुख और समृद्धि से पूर्ण रहा होगा, ऐसा अनुमान लगाना अनुचित न होगा। विष्णु की उपासना तत्कालीन समाज के उच्चकोटि के आध्यत्मिक चिन्तन की सूचक है।

४.८ नाग राजा की मूर्ति

पवाया में प्राप्त नाग राजा की मूर्ति बहुत अधिक खण्डित हो चुकी है। यहाँ तक कि न इसके हाथ हैं, न पाँव और न मुख। किन्तु कला की दृष्टि से इस मूर्ति का मूल्य उक्त विष्णु की मूर्ति से भी अधिक है। सर्प जो मूर्ति के सिर पर फन फहराये हुए है बिखंडित-प्राय हो चुका है। अनुमान लगाया जा सकता है कि इस मूर्ति के कानों में कुण्डल होंगे, जिनके चिह्न अभी तक अंकित हैं। उसके गले के हार का भी निशान बना हुआ है। कमर में भली भाँति कसा हुआ कटिवस्त्र सुशोभित है। भव्य साज-सज्जा और वेशभूषा से ज्ञात होता है कि यह मूर्ति किसी नाग राजा की ही होनी चाहिए। फिर सर्प की उपस्थिति इस तथ्य को प्रमाणित कर देती है। नाग राजा की मूर्ति के स्थापित करने का एक कारण यह रहा होगा कि इस राजा ने मन्दिर बनवाने के लिए राज्यकोष से कुछ दान दिया होगा। अन्य बातें तो सहज अनुमान पर ही आधारित हैं, किन्तु मूर्तिकला तत्कालीन समाज में किस सीमा को छू रही थी, यह सोचने की बात है। कलाकारों में मूर्तिकला के लिए कितने त्याग की भावना विद्यमान थी। वे कला के कैसे उपासक रहे होंगे, यह तथ्य आज भी कौतूहलपूर्ण है।

राजा के विषय में राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण का कथन है :

"राजा प्रजा का पात्र है,
वह लोक प्रतिनिधि मात्र है,
यदि वह प्रजा-पालक नहीं तो त्याज्य है।"

इन पंक्तियों की सार्थकता यदि कहीं देखनी हो तो नाग राजा की इस प्रतिमा के साथ। केवल प्रजा-पालक और लोकप्रिय राजा को ही सामाजिक प्रतिष्ठा मिलती थी। कलाकार भी लोकप्रिय राजा की मूर्ति बना कर उसे सम्मानित करते थे। जिस राजा ने समाज के साथ-साथ कलाकार के हृदय को भी जीत लिया हो वह लोकप्रिय तो होना ही चाहिए, इसके अतिरिक्त भी उसमें कतिपय ऐसे गुण होंगे, जो जन-मन को आकर्षित कर लें। यद्यपि पद्मावती के इस राजा की कीर्ति आज तक विद्यमान है, किन्तु कमी केवल इसी बात की है कि उसके नाम का बोध नहीं। प्राचीनता के गर्त में नाम तो एक बार के लिए भुलाया भी जा सकता है, किन्तु अपने वंश को वह राजा आज भी उजागर कर रहा है कि वह नागवंशीय था। राजसिंहासन की सुरक्षा करने वाला सर्प आज भी उस वंश की कीर्ति-पताका फहरा रहा है। सर्प के चिह्न तो सिक्कों पर भी अंकित हैं, इसी से उनके नागवंशीय होने का परिचय मिलता है। इस प्रकार इस राजा के विषय में दो बातों को निश्चयपूर्वक

P.P. Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कहा जा सकता है, पहली बात यह कि वह नागवंशीय राजा था, और दूसरी बात यह कि वह एक लोकप्रिय शासक था।

४.९ सुवर्ण बिन्दु शिवलिंग

सिंध और मधुअर नदी के संगम पर पवाया से लगभग दो मील पूर्व में एक चबूतरे पर शिवलिंग मिला है। 'मालती माधव' नाटक में इसे सुवर्ण बिन्दु शिवलिंग की संज्ञा दी गयी है। चबूतरा तो पत्थर तथा चूने गारे का बना हुआ है, किन्तु उसमें ईंट भी किसी मात्रा में मिलाई गयी है। इसकी ऊँचाई दो सीढ़ियों भर की है। चबूतरे की लम्बाई 10 फुट और चौड़ाई 16 फुट है। शिवलिंग बहुत प्राचीनकालीन प्रतीत होता है। इस चबूतरे के नीचे ही नीचे एक माँ और बेटे की मूर्तियों के निम्न भाग हैं। बालक एक मंच पर बैठा है। स्त्री के वलय और पायल को देख कर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन मूर्तियों का निर्माण गुप्तकाल के अन्त में कभी हुआ होगा। चबूतरे पर प्रधान रूप से सुवर्ण बिन्दु अर्थात शिव स्थापित हैं। सम्भव है यह चबूतरा बाद में बनाया गया हो। किन्तु इस बात को मानना होगा कि किसी-न-किसी प्राचीन स्मारक का बोध अवश्य कराता है।

४.१० नागों के राजकीय चिह्न

गंगा और यमुना

नागों ने कई राजकीय चिह्नों का व्यवहार किया है। कई चिह्नों ने तो धर्म का चोगा पहन लिया और पवित्र बन गये। इनके सम्बन्ध में मूर्तिकला के प्रयोग भी प्रायः होते रहे। नागकालीन मूर्तिकला के कुछ अभिप्राय (मोटिफ) एवं अलंकरणों ने भारतीय मूर्तिकला को अत्यधिक प्रभावित किया। यहाँ तक कि कुछ अलंकरण तो परवर्ती मूर्तिकला के अंग ही बन गये। इस प्रकार के उपकरणों में विशेषकर (क) गंगा, मकरवाहिनी गंगा, जैसी कि उदयगिरि की वराह मूर्ति के दोनों ओर गुप्तकाल में बनी, (ख) ताड़वृक्ष, तथा (ग) नाग-छत्र का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है।

गंगा तो नागवंशीय राजाओं का राजचिह्न बन ही गयी थी। नागवंशीय सिक्कों पर भी गंगा की मूर्ति कलश धारण किये हुए दिखायी देती है। सिक्कों के अतिरिक्त अपने शिव मन्दिरों को सजाने में भी इसका उपयोग किया गया। गुप्तों ने भी इस रूप में इसका उपयोग किया। जानखट के अभिलेखयुक्त एक मन्दिर के अवशेषों को देख कर इस बात की पुष्टि की जा सकती है कि मन्दिर के द्वार के ऊपर मकरवाहिनी गंगा की मूर्ति का उपयोग सजाने के लिए किया जाने लगा था। मध्यकाल तक के हिन्दू मन्दिरों में गंगा का उपयोग इस रूप में किया जाने लगा था। इसके उपयोग के विकास की कई सीढ़ियाँ हैं। पहले-पहल मकरवाहिनी गंगा की मूर्ति द्वार के दोनों ओर एक ही रूप में बनायी जाती थी। प्रारम्भ में यह द्वार की चौखट के दोनों बाजुओं के ऊपर की ओर बनायी जाती थी। कहीं गंगा किसी वृक्ष की विशेषकर फल वाले आम की डाली पकड़े दिखायी गयी। फिर इसमें एक परिवर्तन और आया। अब ये दोनों ओर की मूर्तियाँ बाजुओं की ओर आ गयी और एक ओर की मकरवाहिनी गंगा दूसरी ओर की, कूर्मवाहिनी यमुना बन गयीं। उदाहरणार्थ–मंदसौर के

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शिव मन्दिर के द्वार का प्रस्तर—श्रवण की कावड़-गंगा प्रारम्भ में शिव मन्दिरों में ही मिलती है, किन्तु आगे चल कर एक अनोखा ही विकास हो गया और पौराणिक गंगा और यमुना बन कर ये शिव मन्दिर के द्वार की पवित्रता की रक्षिकाएँ बन गयीं। किन्तु गंगा और यमुना के पृथक-पृथक वाहनों के दर्शन सर्वप्रथम हमें उदयगिरि की वराह मूर्ति के दोनों ओर होते हैं—गंगा-मकरवाहिनी और यमुना-कूर्मवाहिनी। यहीं से सम्भवतः ये दो देवियाँ बनी होंगी। भारशिवों ने भगवान शिव की नदी माता गंगा की पवित्रता फिर से स्थापित कर दी थी और उसके स्वरूप को इतना निखार दिया था कि आगे चल कर गुप्तों और वाकाटकों ने भी उसे पवित्र और पापहारिणी समझ लिया था। वे अपने मन्दिर के द्वारों पर उसे स्थापित करने में गौरव का अनुभव करते थे। यह एक पवित्रता का चिह्न समझी जाती थी। गंगा की इस प्रकार की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं।

डॉ० जायसवाल ने गंगा की प्राचीनतम मूर्ति जो पत्थर की बनी है, जानखट नामक स्थान में होने का उल्लेख किया है। इसके बाद की मूर्ति जो यमुना की मूर्ति के साथ है भूमरा में बतायी गयी है। उसके बाद की मूर्तियाँ देवगढ़ में मिलती हैं। इनका विवरण श्री कनिंघम ने 'पुरातत्वीय सर्वेक्षण रिपोर्ट खण्ड 10' पृष्ठ 104 में पाँचवें मन्दिर के अन्तर्गत किया है। बताया गया है कि इन मूर्तियों के सिर पर पाँच फन वाले नाग की छाया है। इन मूर्तियों की स्थिति पाखों के नीचे वाले भाग में है। इनकी तुलना समुद्रगुप्त के ऐरन वाले विष्णु मन्दिर में प्राप्त मूर्तियों के साथ की जा सकती है।

डॉ० जायसवाल ने देवगढ़ के नागछत्र को सर्वश्रेष्ठ बतलाया है, उनकी यह मान्यता है कि उस प्रकार का नागछत्र अन्यत्र उपलब्ध नहीं। अब प्रश्न इस बात का है कि गंगा और यमुना के साथ नागछत्र का क्या सम्बन्ध है? पुराणों में इसके विषय में कोई उल्लेख नहीं मिलता। नदी सम्बन्धी भावना सम्भवतः भारशिवों के समय में उदित हुई होगी। इसी प्रकार की एक मूर्ति प्रवरसेन के सिक्के में भी मिलती है, जिसके विषय में पहले कहा जा चुका है कि यह गंगा की होनी चाहिए। इस प्रसंग से यह बात माननी होगी कि नागों को नदियों से विशेष लगाव था।

ताड़

नागकालीन मूर्तिकला की एक अन्य देन है—ताड़ वृक्ष। नागों के द्वारा ताड़ वृक्ष के उपयोग का विवरण तो अन्यत्र भी मिल जाता है। महाभारत में नागों को तालध्वज कहा गया है। ताड़ का यह राज-चिह्न भी कई मुद्राओं पर पाया जाता है। जानखट के मन्दिरों के अवशेषों में ताड़ के वृक्ष के अस्तित्व का पता चलता है। वहाँ ताड़ की आकृति का अलंकरण भी मिला है। ताड़-स्तम्भशीर्ष तो पद्मावती और विदिशा दोनों ही स्थानों पर मिले हैं। इन दोनों को ही नागवंश की राजधानियाँ होने का गौरव प्राप्त हो चुका था। विदिशा के ताड़-स्तम्भशीर्ष की रचना अपेक्षाकृत सरल है। किन्तु पद्मावती के ताड़-स्तम्भशीर्ष में अलंकरण अधिक हैं। लगता है ये अलंकरण प्रारम्भ में तो नहीं होंगे, किन्तु कालान्तर में आ गये होंगे। लगता है कि ताड़ के इस प्रकार के उपयोग की नागों की अपनी ही कल्पना होगी, क्योंकि ताड़ का इस रूप में इतना अधिक प्रचलन अन्यत्र नहीं मिलता।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नाग-छत्र

नाग-छत्र का चिह्न विशेष कर नागों की मुद्राओं पर देखने को मिलेगा। नागों ने सर्प को अपने राजकीय चिह्न के रूप में स्वीकृत किया था। नाग राजाओं की मूर्तियों में भी नाग-छत्र देखने को मिल जायगा। ऐसी कुछ मूर्तियाँ फीरोजपुर विदिशा में प्राप्त हुई हैं जिन पर नाग-छत्र के चिह्न अंकित हैं। नाग देवी-देवताओं की प्रतिमाओं का निर्माण भी विशेष कर नाग-काल में हुआ। नागों के समय में पद्मावती और मथुरा में विशाल मन्दिर, महल, मठ और स्तूप तथा अन्य इमारतों का भी निर्माण हुआ था। किन्तु नाग-छत्र नाग-काल की ही देन है।

४.११ बुद्ध प्रतिमा

पद्मावती में प्राप्त मूर्तियों में बुद्ध की प्रतिमा भी मिली है। इससे केवल यही अनुमान लगाया जायगा कि बुद्ध धर्म का प्रभाव अन्य स्थानों के समान पद्मावती पर भी रहा होगा किन्तु इस प्रतिमा की चरण चौकी पर जो अक्षर अंकित हैं उनसे श्री मो० वा० गर्दे ने यह अनुमान लगाया है कि ये अक्षर ईसा की सातवीं अथवा आठवीं शताब्दी के होने चाहिए। इससे इस सम्भावना को भी नहीं टाला जा सकता कि ये अक्षर ही नहीं वरन् स्वयं यह मूर्ति भी बाद की हो। तब फिर यह मान कर चलना होगा कि बुद्ध धर्म का प्रभाव बहुत समय बाद प्रारम्भ हुआ होगा।

४.१२ ताड़-स्तम्भ शीर्ष

पद्मावती के ध्वंसावशेषों में दूसरा महत्वपूर्ण अवशेष है—ताड़-स्तम्भ शीर्ष। महाभारत में नागों को ताड़ध्वज कहा गया है। नागों की मुद्राओं पर भी ताड़ का राजचिह्न पाया जाता है। वीरसेन नाग का एक अभिलेख जानखट में पाया गया है और भी कुछ मन्दिरों में ऐसे चिह्न मिले हैं जो नागों के साथ ताड़-वृक्ष के सम्बन्ध को स्थापित करते हैं। इन अवशेषों में एक ताड़ की आकृति का अलंकरण भी मिला है। नागों की पद्मावती से पूर्व विदिशा भी राजधानी रह चुकी थी। कुछ अवशेष विदिशा में भी मिलते हैं और दोनों स्थानों में प्राप्त अवशेषों की तुलना करने पर यह सिद्ध हो जाता है कि विदिशा के अवशेष प्राचीनतर हैं। दोनों ताड़ स्तम्भ शीर्षों की तुलना करने पर यह भी प्रतीत होता है कि रचना की सरलता विदिशा के स्तम्भ शीर्ष में है, पद्मावती का ताड़-स्तम्भ शीर्ष रचना में कुछ जटिल-सा प्रतीत होता है। पद्मावती के स्तम्भ शीर्ष के निर्माण में उत्कृष्टता कालान्तर में आ गयी होगी यह अनुमान सहज में ही लगाया जा सकता है।

इन ताड़-स्तम्भ शीर्षों के स्थापित करने का कौन-सा उचित स्थान चुना गया और उसका उद्देश्य क्या हो सकता है? ये प्रश्न भी कम महत्व के नहीं हैं। एक सम्भावना तो इस बात की है कि इन्हें मन्दिरों के निकट स्थापित किया गया होगा। दूसरी सम्भावना यह भी है कि नागों ने अपने मन्दिरों के सम्मुख या उसके निकट इनकी स्थापना की हो। धार्मिक यश-लाभ और सामाजिक प्रतिष्ठा के साथ ही स्मारक के रूप में भी इनका उपयोग किया गया होगा।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यहाँ जिस ताड़-स्तम्भ शीर्ष की चर्चा की जा रही है वह पवाया अथवा प्राचीन पद्मावती पर स्थापित किया गया था । यह पार्वती नदी के उत्तरी तट से कुछ ही दूरी पर अर्थात् पवाया गाँव से लगभग एक मील दूर उत्तर पश्चिम में एक बड़े से ईंटों के टीले पर खेत में पड़ा मिला था। यह लम्बाकार स्तम्भ ऐसा बनाया गया है कि ऊपरी सिरे की ओर पतला होता चला गया है। यह ताड़ की तीन पत्तियों से ढका हुआ है। ऊपरी सिरे की ओर एक बन्द कली तथा पत्तियों के मध्य जो खाली स्थान है उसमें फलों के गुच्छे हैं। इनमें से ऊपर की कली तथा ऊपर के पात उन्नतोन्मुख हैं। नीचे के दोनों पत्ते नतोन्मुख हैं। यह स्तम्भ शीर्ष बहुत कुछ टूट-फूट गया है। जो अंश अवशेष रह गया है उसकी कुल लम्बाई पाँच फीट तीन इंच है। कली का नुकीला सिरा, शेर का सिर तथा स्तम्भ का आधार-खण्ड खण्डित हो चुके हैं। शीर्ष के साथ स्तम्भ होना चाहिए इस बात का अनुमान उस खाँचे से लगाया जा सकता है जो अभी भी विद्यमान है। किन्तु अभी उस खण्ड की खोज नहीं हो पायी है। सम्भव है कि यह भी पवाया के किसी खेत में छिपा पड़ा हो।

भूमरा के मन्दिर में भी ताड़ की विलक्षण आकृतियाँ मिली हैं। ये आकृतियाँ नागों की परम्परागत प्रवृत्तियों की ओर संकेत करती हैं। पद्मावती का ताड़-स्तम्भ शीर्ष इसी बात की ओर संकेत करता है। भूमरा में ताड़ के पूरे के पूरे खम्भे मिले हैं जो ताड़ों के वृक्षों के रूप में गढ़े गये थे। खम्भों का यह ऐसा रूप है जो और कहीं नहीं मिलता है। इसे नाग कल्पना ही कहा जा सकता है। ताड़ के पत्तों का उपयोग सजावट के लिए किया जाता था। इस सम्बन्ध में यह अनुमान लगाना तो स्वाभाविक प्रतीत नहीं होता कि नागों के राज्य में ताड़-वृक्ष अधिक उगते थे। चाहे जो कारण हो नागों ने ताड़-वृक्षों को पवित्र और उपयोगी एवं कल्याणकारी समझा होगा।

श्री मो० बा० गर्दे के निर्देशन में उस टीले की जाँच पड़ताल की गयी थी जहाँ यह स्तम्भ शीर्ष पड़ा मिला था। सबसे पहले तो वहाँ एक छोटा गड्ढा मिला। उस गड्ढे के नीचे एक चबूतरा मिला जिसकी चिनाई चूने और गारे से हुई थी। टीले का निचला अंश पूर्ववत् बना हुआ है। किन्तु उस टीले के एक अन्य भाग में एक और स्तम्भ शीर्ष मिला है। यह स्तम्भ शीर्ष एक ओर तो बिल्कुल सपाट है किन्तु अन्य तीन ओर नाटे कद का एक व्यक्ति बनाया गया है, जो सम्भवतः कीचक है। इन बौने प्राणियों की गर्दन में हार पहनाया गया है। यह गुप्तकाल की मूर्तिकला का नमूना जैसा प्रतीत होता है। शीर्ष के चोटी वाले भाग में जो वेशभूषा पहनायी गयी है वह कला का कोई अच्छा नमूना नहीं प्रतीत होती। यह भी सम्भव है कि शीर्ष वाले इस स्थान पर कभी कोई स्तूप रहा हो अथवा इस विषय में किसी मन्दिर के तोरण अथवा उससे सम्बद्ध किसी स्तम्भ की सम्भावना को भी नहीं टाला जा सकता।

४.१३ सूर्य-स्तम्भ शीर्ष

वेद 'तमसो मा ज्योतिर्गमयः' का स्वर अलापते हैं किन्तु प्रकाश तो भगवान सूर्य से मिलता है। इसी प्रकाश की प्राप्ति के लिए पद्मावती में सूर्य-स्तम्भ शीर्ष की रचना की जाती होगी। पद्मावती में प्राप्त द्विमुखी सूर्य-स्तम्भ में दो मानव मूर्तियों की कल्पना की गयी है

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जो एक-दूसरे की ओर पीठ किये हुए हैं। यह स्तम्भ पवाया नामक गाँव के निकट एक खेत में पड़ा मिला था। सूर्य-स्तम्भ की दोनों मूर्तियों के बीच में एक चक्र अथवा प्रभा मण्डल बनाया गया है। यही अनुमान करना उचित प्रतीत होता है कि यह चक्र अथवा प्रभा मण्डल सूर्य देव का प्रतीक होगा। ये दो मूर्तियाँ सूर्य देव के दो पक्षों का बोध कराती हैं। एक प्रातःकालीन सूर्योदय का दूसरी सायंकालीन सूर्यास्त का। किन्तु खेद तो इस बात का है कि इन दोनों स्तम्भ-शीर्षों, एक ताड़-स्तम्भ शीर्ष और दूसरे सूर्य-स्तम्भ शीर्ष के स्तम्भों की खोज नहीं की जा सकी। हाँ, इस बात का प्रमाण मिलता है कि इनमें स्तम्भ लगे हुए थे, क्योंकि उनके टूट जाने के चिह्न अभी भी बने हुए हैं। सूर्य-स्तम्भ शीर्ष से यह अनुमान लगाना ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है कि इस युग में सूर्य को देवता के रूप में पूजा जाता होगा। द्विमुखी स्तम्भ-शीर्ष जो सूर्य-स्तम्भ शीर्ष है गुप्तकालीन स्तम्भ पर भी मिल जाता है जिसे ऐरन पर देखा जा सकता है। मन्दसौर में यशोधर्मन् के ऐसे ही स्तम्भ शीर्ष प्राप्त हुए हैं। इनमें से एक स्तम्भ का द्विमुखी सिर तो मिल गया है। सूर्य ज्ञान का प्रकाश देने वाला है। राजाओं के द्वारा भी इस स्तम्भ-शीर्ष का उपयोग इसी लाभ की प्राप्ति के लिए किया जाता होगा। सूर्य की उपासना सनातन-धर्म में आदि काल से चली आ रही थी। पद्मावती का सूर्य-स्तम्भ शीर्ष भी हिन्दू-धर्म के इस पक्ष को प्रतिभासित करता है।

४.१४ नागवंशीय सिक्के

यह जान कर आश्चर्य होना स्वाभाविक है कि पद्मावती के इस उत्खनन में कोई नागवंशीय सिक्का नहीं मिला। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि पवाया के निकट इतनी अधिक मात्रा में सिक्के मिले हैं कि नागवंशीय राजाओं ने यहाँ राज्य किया था, इस तथ्य को हृदयंगम करने में कोई कठिनाई ही नहीं रह जाती। सिक्कों की प्राप्ति के द्वारा पौराणिक उल्लेख अथवा अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों की केवल पुष्टि ही नहीं होती, ये स्वयं अपने में पूर्ण साक्ष्य हैं और इस बात को भलीभाँति सिद्ध करते हैं कि इस स्थान को राजधानी बना कर नागों ने न केवल राज्य किया होगा वरन् इस राज्य की कोई अपनी टकसाल होगी जहाँ सिक्कों की ढलाई होती होगी। इससे इस राज्य की आर्थिक स्थिति पर भी प्रकाश पड़ता है। यह एक धनधान्य से सम्पन्न राज्य होना चाहिए। नागवंश के राजाओं ने अपने सिक्कों पर अपने-अपने चिह्न अंकित किये हैं, इससे किसी सिक्के के आधार पर राजा के विषय में जानकारी प्राप्त करने में सुगमता हो जाती है। ग्वालियर के संग्रहालय में नागवंशीय राजाओं के ये सिक्के सुरक्षित रूप से संगृहीत हैं। ग्वालियर का संग्रहालय इस प्रकार न केवल नागवंशीय सिक्के अपितु पद्मावती से सम्बन्धित और भी अधिक सामग्री को सुरक्षित रखे हुए है।

नागवंशीय सिक्कों के विषय में विशेष रूप से उल्लेखनीय तथ्य यह है कि ये आकार में अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। सिक्के के एक ओर मुद्रा लेख अंकित है जिसमें राजा का परम्परागत् वंश का नाम मिलता है। इससे उस राजा की वंश परम्परा का पता चलता है। सिक्के के दूसरी ओर कोई न कोई प्रतीक चिह्न अंकित होता है। कुछ सिक्के ऐसे भी मिले हैं जिनमें प्रतीक चिह्न दोनों ओर अंकित हैं तथा एक ओर प्रतीक चिह्न के साथ-साथ राजा का

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परम्परागत् वंश नाम अंकित है। मुद्रा लेख में राजा के नाम से पूर्व महाराजा-श्री अथवा अधिराज-श्री शब्द भी अंकित मिले हैं।

हरिहर त्रिवेदी ने कुछ ताँबे के सिक्के प्रकाशित किये हैं। इनके ऊपर एक ओर छह पंखुड़ियों वाला कमल बना हुआ है, साथ में कच्छप, स्वस्तिक, वृषश्रृंग तथा उज्जयिनी नामक चिह्न हैं। ये सिक्के पद्मावती की टकसाल के हैं। उनका मत है कि पद्मावती में ये ईसा की पहली तथा दूसरी शताब्दी में प्रचलित थे। किन्तु उन्होंने यह भी लिखा है कि ये सिक्के नाग राजाओं के पद्मावती में राज्य स्थापना करने के पहले जारी किये गये थे। उनकी यह धारणा सम्भवतः इस आधार पर है कि नाग राजाओं ने अपने निज के सिक्के भी जारी किये थे, परन्तु यह स्मरणीय है कि जनपदों के उच्छेत्ता नाग राजा नहीं, गुप्त सम्राट् थे। पद्मावती की टकसाल के सिक्कों का उल्लेख श्री गर्दे महोदय ने भी किया था, परन्तु त्रिवेदी ने इनका सर्वप्रथम स्पष्ट रूप से प्रकाशन किया है। इन सिक्कों से पद्मावती जनपद के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है। (पृ० ३७६) (दे० पृ० ३४)

नागवंश के कुछ सिक्के ब्रिटिश संग्रहालय में भी हैं। ये सिक्के शेषदात, रामदात और शिशुचन्द्रदात के माने जाते हैं। डॉ० काशी प्रसाद जायसवाल ने इन सिक्कों को उन पर अंकित लिपि के आधार पर ईसा पूर्व की पहली शताब्दी का बताया है।[1] उनके अनुसार शेषदात, रामदात और शिशुचन्द्रदात राजा ही क्रमशः शेषनाग, रामचन्द्र और शिशुनन्दी के नाम से अभिहित किये जाते हैं। इन राजाओं के परस्पर सम्बद्ध होने का एक मात्र कारण इनके सिक्के ही हैं। इस सम्बन्ध में एक अन्य बात भी विचारणीय है। वीरसेन के सिक्के तथा उक्त तीनों राजाओं के सिक्कों में समानता है। वीरसेन के जिन दो सिक्कों का उल्लेख प्रो० रैप्सन एवं जनरल कनिंघम ने किया है, उससे सिद्ध होता है कि वीरसेन नागवंशीय राजा था। प्रो० रैप्सन द्वारा उल्लिखित सिक्के में एक ओर राजसिंहासन का चित्र अंकित है जिस पर एक स्त्री आसीन है। इस स्त्री के हाथ में घड़ा है। अनुमानतः यह स्त्री गंगा होंगी। राजसिंहासन के पीछे खड़े नाग का चित्र अंकित है। जनरल कनिंघम वाले सिक्के में भी खड़े नाग का चित्र अंकित है। इस चित्र में एक पुरुष का चित्र बना है। नाग के चित्र से यह कह सकना युक्ति-संगत प्रतीत होता है कि यह नागवंश का सिक्का है और वीरसेन नाग है।

उक्त चार राजाओं के अतिरिक्त उत्तमदात, पुरुषदात, कामदात और शिवदात के भी सिक्के मिले हैं। एक सिक्का जिसे प्रो० रैप्सन ने मदत्त पढ़ा, डॉ० जायसवाल ने भवदात पढ़ा है। पुराणों में शिवनन्दी का उल्लेख नहीं हुआ है किन्तु पवाया के सम्बन्ध में प्राप्त शिलालेख में शिवनन्दी का उल्लेख है, सिक्के में शिवदात अंकित है। इससे लगता है कि यह शिवनन्दी शिवदात ही होगा क्योंकि नन्दी भी नागवंशीय चिह्न है, नागों के सिक्कों पर नन्दी अथवा वृष, नाग अथवा साँप और त्रिशूल के चिह्न भी अंकित मिलते हैं। शिवनन्दी पद्मावती का राजा था।

दात शब्द मूलतः दाता के अर्थ में प्रयुक्त हुआ होगा। यह राजाओं की उदारता का

---

१. अंधकार युगीन भारत, पृष्ठ १६-६६

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सूचक है। ये राजा बलि चढ़ाने वाले थे एवं प्रजा-पालक थे। सिक्कों में अंकित दात शब्द नागवंशीय राजाओं के इसी गुण को द्योतित करता है।

भारशिव राजाओं का कौशाम्बी की टकसाल का एक ऐसा सिक्का मिला है जिसके विषय में इतिहासकार और मुद्राशास्त्र के ज्ञाता एक मत नहीं हो पाये हैं। इस सिक्के में प्राचीन लिपि में कुछ अंकित है, इसके विषय में मतभेद है। यह 'देव' और 'नवस' दो रूपों में पढ़ा गया है। इन अक्षरों के ऊपर एक नाग या सांप का चिह्न अंकित है जो फन फहराये हुए है। यह नवनाग का सिक्का बताया जाता है। सिक्के पर अंकित ताड़ का चिह्न एक दूसरा प्रमाण है जो यह सिद्ध करता है कि यह नागवंश का सिक्का होगा। ताड़ का चिह्न तो नागों के अन्य स्मृति चिह्न पर अंकित चिह्न से भी मेल खाता है। इनमें विशेष रूप से उल्लेख्य है—ताड़-स्तम्भ शीर्ष। अभी तक इस विषय में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह राजा जिसके सिक्कों के प्रसार का क्षेत्र इतना विशाल है कौन राजा था? राजा का नाम कुछ भी हो, इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि यह प्रभावशाली राजा होगा। इसके सिक्कों को डॉ० विन्सेंट स्मिथ ने 'अनिश्चित राजाओं के सिक्कों' के वर्ग में रखा है। इसके सिक्कों का सम्बन्ध नाग सिक्कों से स्थापित होता है।

कौशाम्बी के सिक्के भारशिव राजाओं के सिक्के हैं। पुराणों में इन राजाओं को नवनाग या नवनाक वंशीय बताया है। भारशिव इन्हीं नागवंशीय राजाओं की राजकीय उपाधि थी। इन भारशिव राजाओं के सिक्कों की लिपि की तुलना हुविश्क वासुदेव के सिक्कों के अक्षरों से की जा सकती है। इसके आधार पर ये दोनों समकालीन सिद्ध होते हैं।

वीरसेन के सिक्के जो अधिकांशतः उत्तर भारत और पंजाब में मिले हैं, ऐसे सिक्के हैं जिन पर पद्मावती के नागों का सुपरिचित स्मृति चिह्न ताड़-वृक्ष अंकित मिलता है। ये सिक्के प्रायः चौकोर और आकार में अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। इन सिक्कों पर सामने ताड़ का वृक्ष होता है और पीछे सिंहासन पर बैठी हुई मूर्ति होती है जिसके विषय में पहले लिखा जा चुका है कि यह मूर्ति गंगा की होती है। श्री कनिंघम ने भारशिव के एक अन्य प्रकार के सिक्के का भी उल्लेख किया है, जिसमें एक व्यक्ति की मूर्ति है। यह व्यक्ति बैठा हुआ दिखाया गया है[1]। विशेष बात यह है कि यह व्यक्ति खड़े हुए नाग को हाथ में लिये हुए है। प्रो० रैप्सन[2] ने इसी राजा के एक ऐसे सिक्के का उल्लेख किया है जिसमें एक ऐसी स्त्री की मूर्ति है जो सिंहासन पर छत्र धारण किये हुए बैठी हुई है। इसमें सिंहासन से नीचे वाले भाग से नाग छत्र तक गया है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि नाग छत्र की रक्षा कर रहा है। स्त्री की मूर्ति तो गंगा की ही प्रतीत होती है। इसमें ताड़ का वृक्ष भी बनाया गया है और नवनागों के सिक्कों पर जिस प्रकार समय दिया गया है वैसा ही इसमें भी दिया गया है। कनिंघम ने इस सिक्के को अहिच्छत्र की टकसाल में ढला हुआ माना है। इसी प्रकार का एक सिक्का पद्मावती की टकसाल में भी ढला हुआ बताया गया है जिस पर 'महाराज व

---

१. जनरल कनिंघम कृत—कॉइनस ऑव ऐन्शियेन्ट इण्डिया प्लेट ८, क्रमांक १८।

२. प्रो० रैप्सन कृत—जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसायटी, सन् १९००, पृष्ठ ९७ के सामने वाली प्लेट, क्रमांक १५।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(वि)' लिखा हुआ है[1]। इस पर मोर का चित्र भी है। मोर को वीरसेन अथवा महासेन देवता का वाहन बताया गया है। डॉ० जायसवाल ने इन सिक्कों के आधार पर यह परिणाम निकाला है कि ये सभी सिक्के हिन्दू सिक्कों के ढंग के हैं। इससे लगता है वीरसेन ने कुषाणों के ढंग के सिक्कों का परित्याग करके हिन्दू ढंग के सिक्के बनवाये थे।

वीरसेन के सिक्कों का भारशिव राजाओं के सिक्कों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। भवनाग के सिक्कों के आधार पर डॉ० जायसवाल इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि भवनाग से पूर्व उसके वंश में कई अन्य राजा राज कर चुके थे। सिक्कों से यह भी पता चलता है कि इनका वंश आगरा व अवध के संयुक्त प्रान्तों में राज करता था। इसका कारण उन्होंने बताया है कि इन स्थानों पर उसके बहुत अधिक सिक्के निकले हैं। इन राजाओं की कौशाम्बी में एक विशेष टकसाल रही होगी।

पद्मावती में जो नवनागों के सिक्के बहुत बड़ी मात्रा में मिले हैं और जो ग्वालियर के संग्रहालय में सुरक्षापूर्वक रखे हैं, उनके अतिरिक्त कलकत्ते के भारतीय संग्रहालय में भी कुछ सिक्के संगृहीत हैं। संग्रहालय के दसवें विभाग के चौथे उप-विभाग में सिक्कों का विवरण मिलता है। इन सिक्कों पर विचार करने पर इनके कुछ विशेष लक्षण प्राप्त होते हैं : इन सिक्कों में से कुछ पर कठघरे में पाँच शाखाओं वाला वृक्ष मिलता है। ये सभी एक ही वर्ग के हैं और उनके विषय में विशेष बात यह है कि उन पर समय या संवत् दिया हुआ है। डॉ० स्मिथ ने एक सिक्के पर त्रय नागस पढ़ा था। इस सिक्के पर भी वही वृक्ष अंकित है। इसमें 'त्र' कठघरे के नीचे वाले भाग से प्रारम्भ होता है। डॉ० जायसवाल ने इस 'त्र' से पूर्व किसी अन्य अक्षर की सम्भावना की ओर संकेत किया है। किन्तु यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता। डॉ० स्मिथ ने नागस शब्द दिया है किन्तु डॉ० जायसवाल का मत है कि यह नागस न हो कर नागस्य है। पीछे की ओर शेर के ऊपर सूर्य और चन्द्रमा अंकित हैं। एक सिक्के पर चरज लिखा हुआ है। इससे प्रतीत होता है कि यह सिक्का चरज नाग का होगा। उसके राजगद्दी पर बैठने का संवत् २२ दिया हुआ है। इनमें से एक सिक्के पर हयनागश लिखा मिला है। इससे सिद्ध होता है कि यह सिक्का हयनाग का होना चाहिए। पीछे की ओर वाले हिस्से में डॉ० स्मिथ ने ऊपर वाले चिह्न को त्र पढ़ा था और नीचे वाले चिह्न को 'ब' पढ़ा था। किन्तु डॉ० जायसवाल का संकेत है कि ये दोनों अर्थात् 'ब' और 'त्र' मिल कर साँड का चिह्न बनते हैं। इस साँड के नीचे कोई अक्षर नहीं हैं। पीछे की ओर का लेख इस प्रकार है—श्री हयनागश-३०।

पद्मावती के नागकालीन सिक्कों के विषय में डॉ० अल्टेकर की यह धारणा सही है कि भारशिवों के ये सिक्के ताँबे के बने हुए हैं और मालवों के सिक्कों की भाँति भार में हलके और आकार में छोटे होते हैं, इनके एक ओर तो कोई आख्यान अंकित होता है और दूसरी ओर मयूर, त्रिशूल, साँड़ या नन्दी का चिह्न अंकित होता है। इन सिक्कों से विशेष कर शिवत्व की झलक किसी-न-किसी रूप में मिल ही जाती है। नागकालीन राजाओं का

१. कनिंघम कृत—कॉइन्स ऑव मिडियवल इण्डिया, प्लेट २, चित्र संख्या १३,१४।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

राजधर्म भी ऐसा ही होना चाहिए जिसके द्वारा किसी-न-किसी रूप में शिवत्व की झलक मिल जाती हो। समस्त नाग राजाओं में गणपति नाग के सिक्कों का अधिक विस्तार रहा। नाग-वंशीय इन सिक्कों का भार १८ ग्रेन से लेकर ३६ ग्रेन तक मिलता है।[१]

१. (दि वाकाटक गुप्त एज—पृष्ठ ३००)।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अध्याय पाँच

पद्मावती का वास्तु-शिल्प

५.१ प्राचीन ईंटें

अनेक स्थानों पर पवाया के अति निकट और कुछ दूरी पर जमीन में दबे हुए प्राचीन ईंटों के टुकड़े मिले हैं। इसके साथ ही कई स्थानों पर जमीन में दबी हुई ईंट की दीवारों के अवशेष तक मिले हैं। इन प्राचीन ईंटों का उपयोग तो निकटवर्ती गाँवों के लोग बहुत समय से करते आ रहे हैं। आस-पास के कई गाँवों में पुरानी ईंटें मिली हैं। जिन गाँवों में ये ईंटें सर्वाधिक मात्रा में पहुँची हैं—वे गाँव हैं, पाँचोरा और छिदोरी। कहने के लिए तो ये दोनों गाँव नदी के दूसरी ओर हैं किन्तु ईंटें नदी पार कर के पहुँच गयीं। इन गाँवों के अतिरिक्त पवाया के वर्तमान किले में भी इस प्रचीन सामग्री का उपयोग किया गया है। यद्यपि पवाया का वर्तमान किला इतना प्राचीन नहीं जितने अन्य अवशेष। किला मुस्लिम युग में बना प्रतीत होता है किन्तु उसमें उन प्राचीन ईंटों का उपयोग अवश्य किया गया है। प्राचीनता का यह ऋण उसके ऊपर आज भी चढ़ा हुआ है। इन ईंटों के द्वारा ही अनेक शताब्दियों पूर्व निर्मित प्राचीन काल के अनेक निर्माण कार्यों की झाँकी मिल जाती है जिन्हें तोड़ कर इन ईंटों को प्राप्त किया गया होगा। 'खण्डहर बता रहे हैं इमारत बुलन्द थी' वाली उक्ति पद्मावती के विषय में पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है।

पवाया, पाँचोरा और छितोरी गाँवों में जिन प्राचीन ईंटों के नमूने मिले हैं वे इन तीनों स्थानों पर एक ही प्रकार के हैं। इन प्राचीन ईंटों का आकार भी बड़ा है। इनकी लम्बाई १६ इंच, चौड़ाई १० इंच और मोटाई ३ इंच हैं। आज जिस आकार की नवीन ईंटें बन रही हैं ये प्राचीन ईंटें उनसे कई गुनी हैं। किन्तु इन प्राचीन ईंटों का आकार एक ही है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि ये किसी-न-किसी साँचे की बनी होंगी, जिसका आकार समान रहा होगा।

५.२ पद्मावती का दुर्ग

अभी ऊपर पद्मावती के ऐसे अवशेषों की चर्चा की गयी है जिनका समय ईसवी की प्रथम अथवा द्वितीय शताब्दी से ले कर सातवीं अथवा आठवीं शताब्दी तक का ठहरता है। किन्तु कुछ अवशेष इस काल के बाद के भी हैं। इनमें से विशेष रूप से उल्लेखनीय तो वह किला है जिसका घाट पत्थर का बना हुआ है और जो नदी के किनारे बनाया गया था।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इसके निर्माण का स्थल है सिंध और पार्वती नदी का संगम। एक अनुश्रुति के अनुसार इस किले को राजा पुन्नपाल के द्वारा बनाया हुआ बताया गया है। यह परमार वंश का राजा था। किन्तु यह दुर्ग जिस रूप में आज दिखाई दे रहा है उसे उस रूप में नरवर के कछवाहा राजा ने बनवाया था। यह कछवाहा राजा स्वतंत्र शासक नहीं था, अपितु दिल्ली शासन का करदाता राजा था। इस किले में कहीं-कहीं पर ऐसी ईंटों का उपयोग किया गया है जो किसी अन्य स्थान से खोदी गयी प्रतीत होती हैं। इनकी चिनाई चूने से हुई है। प्राचीनता का केवल इतना ही ऋण इस किले पर है कि इसमें कुछ सामग्री पुरानी अवश्य है। यह ध्वस्त दुर्ग लगभग चालीस एकड़ क्षेत्रफल घेरे हुए है। इसके उत्तर-पश्चिम कोने पर एक प्रवेश द्वार है तथा एक छोटा-सा दरवाजा दक्षिण-पूर्वी कोने पर भी है। यहीं से तनिक पीछे की ओर चल कर पत्थर का घाट दृष्टिगोचर होता है। अब तो किले का अधिकांश भाग जंगल में परिवर्तित हो चुका है और खण्डहर मात्र ही शेष रह गये हैं। उसका प्रासाद खण्ड तो पूर्ण रूप से नष्ट ही हो चुका है। जो कुछ भाग रहा भी है वह भी धीरे-धीरे नष्ट होता जा रहा है क्योंकि उसकी रक्षा का कोई उपाय नहीं किया जा रहा है।

५.३ धूमेश्वर महादेव का मन्दिर

स्मारकों के इस प्रसंग में धूमेश्वर महादेव के मन्दिर का उल्लेख भी समीचीन प्रतीत होता है। यह स्मारक पवाया से लगभग दो मील उत्तर-पश्चिम में है। इसे धूमेश्वर महादेव के मन्दिर के नाम से जाना जाता है। सिंध नदी में जो जल-प्रपात है जिसका उल्लेख भवभूति ने अपने नाटक 'मालती-माधव' में किया है, यह मन्दिर उस जल-प्रपात के अत्यन्त निकट ही है। पत्थर, ईंट, गारे और चूने में बनी हुई यह इमारत देखने में बड़ी भव्य प्रतीत होती है। आज यह एकांत में है, और इसके दर्शन करने वालों की संख्या अत्यन्त सीमित हो गयी है, किन्तु किसी समय इसके दर्शकों की संख्या विशाल रही होगी। यह मन्दिर स्थिति की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है। पत्थर के एक ऊँचे चबूतरे पर बने हुए इस मन्दिर की एक अन्य विशेषता यह है कि इसके तीनों ओर सीढ़ियाँ हैं। जिनका आशय यही रहा होगा कि दर्शक किसी भी ओर से जा कर भगवान के दर्शन कर सकें। ये सीढ़ियाँ बड़ी साफ-सुथरी और अच्छी बनायी गयी थीं। इस मन्दिर का मुख पूर्व की ओर है, जिससे प्रस्फुटित होते ही सूर्य भगवान की किरणें अन्दर तक प्रवेश कर सकें। मन्दिर में पुण्यागार, अन्तराल, सभामण्डप और द्वारमण्डप सभी की व्यवस्था की गयी है। सभामण्डप दो खण्डों में विभाजित हो गया है, एक मुख्य बैठने का स्थान एवं दूसरे खण्ड के दो पार्श्व हो गये हैं। यह दो मंजिली इमारत है जिसमें ऊपर गुम्बद है। कोष्ठ-छत्र को भली प्रकार सजाया गया है तथा ड्योढ़ी बंगाल शैली की छतवाली है। यह मन्दिर लगभग तीन शताब्दी पूर्व का होना चाहिए। कहा जाता है कि इसे ओड़छा के बुन्देला राजप्रमुख वीरसिंह देव ने बनवाया था। वीरसिंह देव ने जहाँगीर के शासनकाल में राज्य किया है। सिंध नदी के जल-प्रपात से ऊपर चल कर एक अन्य स्मारक है जिसका नाम नौचंकी बताया जाता है। कहा जाता है कि यह इमारत दिल्ली के शासक पृथ्वीराज चौहान के समय की है। किन्तु इसके रचना कौशल से तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस स्मारक के

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रचनाकाल और धूमेश्वर महादेव के मन्दिर के रचना काल में कोई विशेष अन्तर नहीं होना चाहिए।

५.४ पद्मावती का विष्णु मन्दिर

पद्मावती में जितने अवशेष अब तक मिले हैं उन सब में किसी नाग राजा द्वारा बनवाया हुआ विष्णु मन्दिर विशेष महत्व का है। यह मन्दिर तत्कालीन सामाजिक इतिहास के कई छिपे हुए तथ्यों को प्रगट करता है, साथ ही उस सामाजिक धर्म-साधना की ओर भी संकेत करता है जो उस समाज में अविच्छिन्न रूप से प्रचलित रही होगी। इस मन्दिर के अनावरण से जो प्रश्न खड़े हो गये हैं उनकी इतिहासकारों ने विस्तारपूर्वक चर्चा की है।[१]

यह मन्दिर आज तक किस रूप में सुरक्षित रह पाया यह भी बड़े कौतूहल की बात है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस राजा ने पद्मावती को जीता होगा उसने ही इस विष्णु मन्दिर को इस प्रकार से छिपाने की व्यवस्था की होगी। किन्तु अभी तक इस बात की जानकारी नहीं मिल सकी है कि प्राचीन मन्दिर को नवीन निर्माण के अन्दर दबा देने का कारण क्या था ? यह निर्माण मूलतः दो विशाल चबूतरों के रूप में था जो एक के ऊपर एक थे। दोनों चबूतरे वर्गाकार आकृति के हैं। दोनों चबूतरों में चूंकि केवल इतना अन्तर है कि ऊपर के चबूतरे की लम्बाई ५३ फुट तथा नीचे के चबूतरे की लम्बाई ९३ फुट है।

जब तक उत्खनन कार्य पूर्णरूपेण सम्पन्न नहीं हो जाता तब तक इस मन्दिर तथा अन्य निर्माण के विषय में निर्णायक विचार बना पाना सम्भव नहीं है। किन्तु उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर इतना तो सरलतापूर्वक कहा जा सकता है कि एक पूर्वकालीन निर्माण विद्यमान था। कालान्तर में उसके ऊपर एक चबूतरा और जोड़ दिया गया जिसका आकार उससे बड़ा था। यह नवीन चबूतरा लम्बाई में १४३ फुट तथा चौड़ाई में १४० फुट था। इसमें नये चबूतरे के जोड़ देने का प्रधान कारण क्या रहा होगा यह निसंदिग्ध रूप से नहीं कहा जा सकता है। इस विषय में कई सम्भावनाएँ हैं। पहली और बड़ी सरल-सी सम्भावना तो यही प्रतीत होती है कि इस नये चबूतरे को केवल विस्तार में वृद्धि करने के लिए जोड़ दिया गया हो। किन्तु इस प्रकार का निष्कर्ष निकालने में केवल एक ही कठिनाई उपस्थित होती है। वह यह कि प्राचीनतर और नीचे वाला चबूतरा अलंकृत था किन्तु बाद में जोड़ा गया चबूतरा नितान्त सादा है। एक सम्भावना यह भी लगती है कि इस नये घेरे को निर्माण के लिए आवश्यक समझा गया हो। किन्तु ऐसे स्पष्ट लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होते जिनके द्वारा यह सिद्ध हो कि वास्तव में निर्माण की आवश्यकता अनुभव की गयी होगी। इसका एक कारण और भी है कि बीच वाले चबूतरे का कोई भाग टूटा-फूटा अथवा निकला हुआ नहीं था।

---

१. श्री मो० बा० गर्दे—दि साइट ऑफ पद्मावती—भारत की पुरातत्वीय सर्वेक्षण रिपोर्ट—सन् १९१५-१६ पृष्ठ १०१-१०९ तथा मध्य भारत का इतिहास पृष्ठ ६००।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इस सम्बन्ध में जो सम्भावना अधिक उपयुक्त और युक्तिसंगत प्रतीत होती है वह यह है कि विजेता शक्ति के विजित शक्ति के प्रति धार्मिक अथवा वंशगत विद्वेश के कारण परवर्ती चबूतरे का निर्माण कराया गया हो। धार्मिक विद्वेशों में तो बौद्ध और हिन्दू धर्म के परस्पर विरोधी होने के प्रमाण मिलते हैं। किन्तु इस सम्भावना को अधिक प्रश्रय इसलिए नहीं मिल पा रहा है कि उत्खनन कार्य के समय बौद्ध धर्म के कोई अवशेष नहीं मिल पाये। यदि बौद्ध धर्म का अधिक प्रभाव पद्मावती पर रहा होता तो कुछ न कुछ अवशेष तो अवश्य ही मिलते। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। इस कारण बौद्ध धर्म के विद्वेश का कारण उपस्थित नहीं होता।

ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर एक तीसरी सम्भावना को अधिक प्रश्रय मिला है। पद्मावती पर नागवंश के बाद गुप्तवंश का शासन स्थापित हो गया था। समुद्रगुप्त ने पद्मावती पर अधिकार किया था। यह बात भी माननी होगी कि नागवंशीय कला गुप्त-कालीन कला से कहीं श्रेष्ठतर और आकर्षक थी। गुप्त शासक सम्भवतः नागों की इस श्रेष्ठता को सहन न कर सके हों और उनकी श्रेष्ठता पर इस प्रकार पर्दा डाल दिया हो। यह भी सम्भव है कि यह कार्य समुद्रगुप्त के समय में न किया गया हो, कालान्तर में पूरा किया गया हो।

इस मन्दिर के पास ही एक विष्णु-प्रतिमा की प्राप्ति हुई है और उसी के पास एक नाग राजा की मूर्ति भी मिली थी। इन समस्त अवशेषों से यह परिणाम निकाला गया है कि यह विष्णु मन्दिर पद्मावती के नाग राजाओं का था क्योंकि नाग शिव के उपासक तो थे ही विष्णु में भी उनकी अगाध श्रद्धा थी। इस मन्दिर का ऊपरी भाग किस प्रकार का बना हुआ था यह जानने के लिए हमारे पास आज कोई भी साधन नहीं है। परन्तु इसी मन्दिर के निकट लगभग १२ फुट लम्बा तोरण प्रस्तर प्राप्त हुआ है। इसके आधार पर यह सरलता-पूर्वक कहा जा सकता है कि इन दोनों चबूतरों के ऊपर कोई मनोरम निर्माण रहा होगा जिसमें पत्थर और ईंटों के गर्भ-गृह प्रदक्षिणापथ बने हुए थे।

पद्मावती के इस मन्दिर के पास ही अनेक मृण्मूर्तियाँ मिली हैं। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन मूर्तियों का उपयोग विष्णु मन्दिर की दीवारों को सजाने के लिए किया जाता होगा। यहीं पर एक ऐसा स्तम्भ शीर्ष भी मिला है जो सम्भवतः मन्दिर के किसी प्रांगण में दबा पड़ा होगा। इसमें ताड़ वृक्ष की आकृति के साथ एक छोटा-सा नन्दी भी बना हुआ है। यह भी सम्भव है कि नाग राजाओं का यह राजचिह्न-युक्त-स्तम्भ इसी मन्दिर में स्थापित किया गया हो अथवा पास ही कहीं नागों की राजसभा हो, जिसे इस स्तम्भ के द्वारा सजाया जाता हो। पद्मावती का यह मन्दिर अपने मूल रूप में कैसा था यह अनुमान लगाना बड़ा कठिन है।

इस प्रसंग में भूमरा के शिव मन्दिर का उल्लेख अधिक समीचीन प्रतीत होता है, जिससे पद्मावती के विष्णु मन्दिर के तत्कालीन स्वरूप पर कतिपय प्रकाश पड़ता है।

५.५ भूमरा का शिव मन्दिर

पद्मावती के विष्णु मन्दिर की तुलना भूमरा के शिव मन्दिर से करने से कुछ नवीन

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है। भूमरा भूतपूर्व नागोद राज्य के ऊचेहरा गाँव से बारह मील पश्चिम की ओर है। यहाँ एक प्राचीन शिव मन्दिर मिला है जो अब जर्जरित अवस्था में है। इस मन्दिर का नाम भाकुल शिव मन्दिर बताया गया है। भाकुल का अर्थ होता है भारशिव नागों के कुल देवता। इसके निकट ही दुरेहा नामक स्थान पर एक स्तम्भ मिला है जिस पर डॉ० जायसवाल ने 'वाकाटकानाम' पढ़ा था। इसके ऊपर एक चक्र बना हुआ है। यह चक्र हो सकता है विष्णु का सुदर्शन चक्र ही हो। भूमरा के दक्षिण में खोह नामक एक स्थान और है। इस स्थान पर एकमुख शिवलिंग की प्राप्ति हुई है, जो इसी युग का प्रतीत होता है। भूमरा से ही लगभग पन्द्रह मील की दूरी पर 'नचना' अथवा ऐतिहासिक चणक नामक एक स्थान और है जहाँ इसी युग का एक शिव मन्दिर मिला है और एक शिलालेख की प्राप्ति हुई है। इन अवशेषों से यही निष्कर्ष निकलता है कि यह स्थान भी पद्मावती के भारशिवों के अधिकार में रहा होगा। उसके बाद इसे वाकाटकों का संरक्षण मिला और अन्त में यह स्थान ही गुप्तों की राज्य सीमा बना होगा।

अब इस मन्दिर की रचना पर विचार किया जाय। इसमें एक गर्भगृह है जिसका क्षेत्रफल १४४ वर्गफुट है। यह वर्गाकार है। बीच में ६ फुट ऊँचा और ३ फुट व्यास का एक मुखलिंग स्थापित किया गया है। इसके मस्तक के तीसरे नेत्र और अलंकरणों की तुलना उदयगिरि की वीणा-गुहा के एक मुखलिंग के अलंकरण से की जा सकती है। गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणापथ बना हुआ है। इसके सामने एक सभामण्डप था जिसकी लम्बाई आठ फुट दो इंच और चौड़ाई पाँच फुट आठ इंच है। सभामण्डप के दोनों ओर दो छोटे-छोटे मन्दिर और बने हुए हैं।

इस सम्बन्ध में जो बात विशेष महत्व की है, वह है, यहाँ के मन्दिर में ताड़-वृक्ष के तने के द्वार स्तम्भ। साथ ही ताड़-वृक्ष अन्य अलंकरणों में उपयोग में आया है। ताड़-वृक्ष का उपयोग केवल नागों द्वारा किया गया है अन्य कहीं भी इसका उपयोग नहीं मिलता। इस दृष्टि से निश्चय ही इन निर्माणों का सम्बन्ध नागों से किसी-न-किसी रूप में रहा होगा। इनके निर्माण का समय पद्मावती के अवशेषों के निर्माण के समय से मेल खाता है। इन अवशेषों में मूर्तियाँ भी मिली हैं। इनकी तुलना विदिशा में प्राप्त नागकालीन मूर्तियों से की जा सकती है। अतएव इनका निर्माण काल वही मानना होगा जो पद्मावती के अवशेषों का निर्धारित किया गया है। भारशिवों के साम्राज्य के विस्तार का स्पष्ट चित्र हमारे सामने नहीं है, फिर भी अवशेषों की समानता से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पद्मावती के विष्णु-मन्दिर और भूमरा के शिव मन्दिर में एक कलागत समानता प्रतीत होती है।

इसके अतिरिक्त राजगृह के निकट मणियार मठ में भी कुछ अवशेष मिले हैं, जिनके विषय में यह अनुमान लगाया जाता है कि ये नाग राजाओं के होंगे। यहाँ विष्णु, शिव और गणेश तीन देवताओं की मूर्तियाँ मिली हैं। पद्मावती के भारशिव भी विष्णु के उपासक थे, इस तथ्य को नहीं भुलाया जा सकता। इसके अतिरिक्त मणियार मठ में स्त्री-पुरुषों की कुल ऐसी मूर्तियाँ मिली हैं जिनके सिर पर नाग छत्र है। पद्मावती में भी इस प्रकार के नाग छत्र मिले हैं। इससे पद्मावती के नाग साम्राज्य की व्यापकता की एक झाँकी मिल जाती है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नाग शिवोपासक थे। शिव की अनेक मूर्तियाँ मथुरा में भी मिली हैं। जिन कुषाण शासकों के सिक्कों पर नन्दी सहित शिव की एक या कई मुख वाली मूर्तियां मिलती हैं उनमें विमकैडफाइसिस, वासुदेव एवं कनिष्क तृतीय के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मथुरा से कुषाणकालीन एक शिवलिंग की भी प्राप्ति हुई है। शक लोग इसकी पूजा करते रहे हैं। शिवलिंग न केवल कुषाणकालीन अपितु गुप्तकालीन भी मिले हैं। किसी-किसी मूर्ति में शिव और पार्वती को नन्दी के सहारे खड़ा दिखाया गया है। एक चतुर्भुजी शिव की मूर्ति भी मिली है। एक अन्य मूर्ति में शिव-पार्वती को कैलाश पर्वत पर बैठे दिखाया गया है। उसके नीचे रावण की मूर्ति है जो पहाड़ को उठा रहा है। पहाड़ का एक कोना ऊपर उठ गया है।

शिव और पार्वती के अन्य रूप भी इन मन्दिरों में पाये जाते हैं, मथुरा में एक मूर्ति ऐसी मिली है जिसमें शिव क्रुद्ध-भाव में दिखाये गये हैं। यह शिव का रौद्र रूप है। इसी मूर्ति में पार्वती को भयभीत मुद्रा में दिखाया गया है। कला की दृष्टि से ये मूर्तियाँ अत्यन्त उत्कृष्ट बन पड़ी हैं।[१]

भूमरा के अतिरिक्त विन्ध्य क्षेत्र से गुप्तकालीन अन्य मन्दिर भी मिले हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मध्यदेश में शिव की उपासना का क्षेत्र बड़ा विशाल था। ये सभी मूर्तियाँ ईसा की पहली शताब्दी की देन हैं। इन सभी में नागों, कुषाणों और गुप्तों का अमिट प्रमाण प्रतिलक्षित होता है।

५.६ मुस्लिम मकबरे

इतिहास साक्षी है कि पवाया पर मध्ययुग में मुस्लिम शासकों का आधिपत्य हो गया था। मध्ययुगीन मुस्लिम शासक सिकन्दर लोदी ने ग्वालियर, चंदेरी और नरवर के साथ-साथ पद्मावती पर भी अपना आधिपत्य जमा लिया था। यह अधिकार उसे परमारों से प्राप्त हुआ था। मुस्लिम शासकों ने अपनी सभ्यता और संस्कृति की छाप कतिपय इमारतों के रूप में पद्मावती पर छोड़ी है। मुस्लिम इमारतों का अपना एक ढंग होता है। इमारतों के गुम्बदों के रूप में इसकी प्रतीति एक सहज कार्य है। मस्जिद उनकी धार्मिक इमारत होती है। जहाँ भी मुसलमानों की कुछ इमारतें होंगी वहाँ एक न एक मस्जिद अवश्य होगी। प्राचीनकाल में तो धर्म का प्रचार कार्य मुसलमानों के द्वारा इतनी अधिक मात्रा में किया गया कि हिन्दुओं के स्मारकों को नष्ट करके उन्होंने मुस्लिम इमारतें बनवायीं। पद्मावती में भी जो मकबरे बने हैं उनमें प्राचीन ईंटों का उपयोग किया गया है। सम्भव है जहाँ आज मुस्लिम मकबरे बने हुए हैं वहाँ इनसे पहले कोई हिन्दू स्मारक रहा हो।

पवाया से कुछ ही दूरी पर लगभग पाँच मकबरे हैं जो आज भी मध्य युग की कहानी कह रहे हैं। इसी स्थान पर एक मस्जिद भी है। इन सभी मकबरों में पुरानी ईंटें लगवायी गयी हैं। ये चूने से चिनी हुई हैं। ये ईंटें तो ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों की बनी प्रतीत होती हैं। इमारतों के गुम्बद मात्र ही मध्ययुगीन प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। जैसा कि अभी कहा जा चुका है पद्मावती के विषय में यह धारणा निर्मूल नहीं है कि मुसलमानों ने कई प्राचीन सुन्दर इमारतों को नष्ट-भ्रष्ट करके अपने ये मकबरे बनवाये होंगे। कला का यह

१. डॉ० कृष्णदत्त वाजपेयी—मथुरा—पृष्ठ ३१।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्तर कोई साधारण अन्तर नहीं है। दोनों प्रकार के स्मारकों की तुलना करने पर यह युगान्तरकारी परिवर्तन सामने आ जाता है। किन्तु प्रकट प्रमाणों के अभाव में उन सभी विवरणों को प्रस्तुत नहीं किया जा सकता जो इस सम्बन्ध में अभी अनुमानित ही हैं। यदि उत्खनन का कार्य किया जाय तो इस तथ्य की पुष्टि विस्तारपूर्वक की जा सकती है।

प्राचीन काल से ले कर अर्वाचीन काल तक पद्मावती ने कला की दृष्टि से कई प्रकार के दिन देखे। नागवंशीय युग कला की दृष्टि से स्वर्ण युग था। इस युग में न केवल भव्यतम भवनों का ही निर्माण हुआ था अपितु मूर्तिकला की भी बहुत प्रगति हुई थी। मृण्मूर्तियों के अनेक प्रकार इस बात का प्रमाण हैं कि मूर्तिकला अपने उच्च शिखर पर पहुंच चुकी थी। भवनों और मन्दिरों की दीवारों को सजाने के अन्य उपकरणों के साथ मृण्मूर्तियों का भी आश्रय लिया जाता था। इतने ऊँचे-ऊँचे मकान बनते थे कि आज भी इनके विषय में कल्पना करके बड़ा कौतूहल होता है। पद्मावती में टकसाल थी, जहाँ सिक्के बना करते थे और जहाँ से अन्य स्थानों के व्यापारियों का आवागमन बना रहता था। वह एक ऐसा युग था जिसमें कला-कौशल की तो उन्नति हुई ही थी, पद्मावती में ज्ञान-विज्ञान की भी बहुत प्रगति हो चली थी। प्राचीनकालीन कला की तुलना में नवीन और बाद वाले कार्य अत्यन्त निम्न कोटि के प्रतीत होते हैं।

यद्यपि मुस्लिम बादशाहों में कला के प्रति बड़ी रुचि थी जिसका परिचय उन्होंने अन्य स्थानों पर दिया है, किन्तु पद्मावती में उन्होंने कोई ऐसा कार्य नहीं किया जिसकी प्रशंसा की जाय। इसका कारण यह है कि कालान्तर में पद्मावती का वैभव कम होने लगा था और यहाँ किसी प्रकार का ऐसा आर्कषण नहीं बचा था जिसके कारण बड़े-बड़े बादशाहों की दृष्टि इस नगर पर जाती। यद्यपि स्थिति की दृष्टि से पद्मावती आज भी आकर्षक प्रतीत होती है, नदियों का संगम और अन्य प्राकृतिक स्थल कुछ इस प्रकार के प्रतीत होते हैं कि आज तक यह बात समझ में नहीं आ पाती कि पद्मावती के पतन का क्या कारण रहा होगा। यदि देखा जाय तो जहाँ अन्य नगर जो नदियों के तट पर अथवा नदियों के संगम पर बसे हुए हैं आज भी वैसे ही बने रहे किन्तु पद्मावती का स्वरूप इतना विकृत हो गया कि आज इसके इतिहास की कड़ियाँ ही नहीं जुड़ पा रही हैं। आज इस बात की जानकारी भी बड़ी कठिन हो गयी है कि किन-किन शक्तियों ने इस पर शासन किया और उनका अपना क्या योगदान रहा, इस नगर के वैभव के दिन कैसे पलटे और किस प्रकार खण्डहरों में बदल गया। आज पद्मावती ही क्यों अनेक और भी संस्कृतियाँ बदल गयीं, प्राचीन वैभव चिह्न मिट गये और आज उनके विषय में बहुत कम जानकारी मिलती है। इस सम्बन्ध में एक बात तो सामान्य रूप से कही जा सकती है कि विजेता शक्तियों ने विजित शक्तियों के गौरव को मिटाने के अनेक प्रयोग किये। उनके इतिहास को मिटाने का प्रयत्न किया। यहाँ तक कि आधुनिक युग तक यह कार्य होता रहा और आज प्राचीन भारत की चर्मोत्कृष्ट वैभवशाली संस्कृति के अनेक अवशेष मिट्टी में मिल चुके हैं। पद्मावती भी इस विषय में अपवाद नहीं। आज उसके गौरव की स्मृति मात्र शेष है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अध्याय छः

पद्मावती के नवनागों की धर्म-साधना

६.१ अश्वमेघ यज्ञ

पद्मावती के शासक भारशिवों ने काशी में दस अश्वमेध यज्ञ करके उस स्थान का नाम ही दशाश्वमेधघाट रखा। यह मत डॉ० काशी प्रसाद जायसवाल ने अभिव्यक्त किया है किन्तु डॉ० दिनेशचन्द्र सरकार इसे एक विचित्र कल्पना मात्र मानते हैं। किन्तु वाकाटकों के दान सम्बन्धी ताम्रपट्ट का यह उल्लेख 'दशाश्वमेधवभृथ-स्नानम्' 'भारशिवानाम्' अर्थात् उन भारशिवों का, जिन्होंने दस अश्वमेध यज्ञ और उनके अन्त में अवभृथ स्नान किये थे यह सिद्ध करता है कि भारशिवों ने दस अश्वमेध यज्ञ किये थे। इसके साथ ही उन्होंने गंगा की पवित्रता को समझा था और उसे एक राजकीय चिह्न मान लिया था। गंगा को राजकीय चिह्न मानना और सिक्कों तथा मूर्तियों के द्वारा इसका प्रचार एक प्रकार से धर्म के द्वारा साम्राज्य के विकास की बात सिद्ध होती है। गंगा को अपने पराक्रम से प्राप्त करने वाले भारशिव राजा ही थे। शिशुनाग ने तो पूरी गंगा को प्राप्त कर लिया था किन्तु यह भी सच है कि नवनागों ने उसे प्रयाग तक प्राप्त कर लिया था।

नागों के अश्वमेध यज्ञ के सम्बन्ध में साँची की पहाड़ी के दक्षिण में लगभग १२ फुट लम्बे विशालकाय एक पशु की मूर्ति पर अपनी दृष्टि केन्द्रित की जाये तो यह मूर्ति घोड़े की-सी प्रतीत होती है। इसके पास ही एक नाग राजा की भी मूर्ति है जो देखने में बड़ी मनोरम प्रतीत होती है। किन्तु इन मूर्तियों पर कोई अभिलेख नहीं है। इसके अतिरिक्त काशी में भी दो पत्थर के अश्व प्राप्त हुये थे। इनमें से एक नगवा में था[१] और दूसरा लखनऊ संग्रहालय में चला गया है।[२] ऐसा प्रतीत होता है कि साँची के पाषाणश्व का सम्बन्ध भी अश्वमेध से ही होगा। उक्त ताम्रलेख का उल्लेख भी विश्वसनीय प्रतीत होता है।

अश्वमेध के सम्बन्ध में एक अन्य स्रोत से भी सूचना मिलती है। डॉ० हरिहर त्रिवेदी ने एक नाग-मुद्रा का प्रकाशन किया था।[३] उनके कथन के अनुसार इस सिक्के पर एक ओर

---

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका-सम्वत् १९८४, पृष्ठ २२९।

२. वही सम्वत् १९८५, पृष्ठ १।

३. दी जर्नल ऑफ न्यूनिस्मैटिक सोसायटी ऑफ इण्डिया मार्च, १९५३।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अश्व की आकृति थी और दूसरी ओर उन्होंने धराज स्क—पढ़ा था। उन्होंने इस सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त किया था कि यह सिक्का स्कन्द नाग का होना चाहिए। इस बात से एक विशेष धारणा की पुष्टि होती है कि पद्मावती के नाग राजाओं में से एक-न-एक ऐसा राजा अवश्य हुआ जो अश्वमेधयाजी था। साँची के निकट अश्व की प्रस्तरमूर्ति बनाना उसी का कार्य होगा। चम्मक में प्रवरसेन द्वितीय का एक ताम्रपत्र मिला है जिसके द्वारा नागों के सम्प्रदाय और धर्म के सम्बन्ध में कुछ जानकारी मिल जाती है। वैसे नाग धर्म का आश्रय ले कर चले थे और उनके धर्म के सम्बन्ध में कोई दो मत नहीं हैं। वे जहाँ भी जाते थे वहीं शिवलिंग को अपने साथ ले जाया करते थे। पद्मावती में भी उन्होंने शिवलिंग की स्थापना कर दी थी। वे गंगा को पवित्र मानते थे। इस तत्व का निरूपण उनके सिक्कों के द्वारा भी हो जाता है। नागों के सिक्कों के अन्य चिह्न उन्हें शिव के परम भक्त तो घोषित करते ही हैं किन्तु इसके साथ ही उन्होंने विष्णु की उपासना को भी प्रधानता दी। उनके सिक्कों के मयूर, त्रिशूल, नन्दी तथा सिंह उनकी शिव-भक्ति के परिचायक हैं। यहाँ एक प्रश्न और उपस्थित होता है। क्या नाग राजा नागपूजक भी थे ? वैसे नाग-छत्र को उन्होंने अपनी मुद्राओं और मूर्तियों पर स्थान दिया है किन्तु नाग शिव के गले का हार बन कर आया है जो कि उनके आराध्य थे। आज भी हम अर्द्धचन्द्र को शिव के ललाट पर सुशोभित करते हैं। पद्मावती के भवनाग ने द्वितीया के चन्द्र को अपनी मुद्रा के चिह्न के रूप में अपनाया। पद्मावती पर स्वर्ण बिन्दु महादेव का मन्दिर मिला है। किन्तु उसकी मूर्ति नहीं मिल पायी है अतएव नवनागों के शिव का क्या स्वरूप था इसकी जानकारी के लिए कोई ठोस प्रमाण प्राप्त नहीं होता।

ऊपर शिव और विष्णु के समन्वय के सम्बन्ध में लिखा जा चुका है। इतनी बात तो निस्सन्देह रूप से कही जा सकती है कि—शिव का अस्त्र—त्रिशूल था और विष्णु थे—चक्रपाणि युक्त। अनेक नाग राजा जहाँ शिव के भक्त थे वहाँ विष्णु में भी उनकी भक्ति कम नहीं थी। ऐसे राजाओं में अच्युत का नाम लिया जा सकता है जिसने अपना नाम ही विष्णु-भक्तिसूचक रखा था। इसके अतिरिक्त एक अन्य प्रमाण है—सुदर्शन चक्र जो कुछ राजाओं के सिक्कों पर मिलता है।

भारशिव राजा सूर्य की उपासना करते थे। इसी कारण उन्होंने सूर्य-स्तम्भ शीर्षों का निर्माण कराया होगा। गंगा में भी उनकी अगाध भक्ति थी, जिसके पवित्र जल से उन्होंने अवभृथ स्नान किया था और राजगद्दी पर बैठे थे। साथ ही ताड़-वृक्ष को भी उन्होंने पवित्र स्थान दे कर अपने राजचिह्न के रूप में स्वीकार कर लिया था। विदिशा और पद्मावती दोनों स्थानों पर सुन्दर ताड़-स्तम्भ शीर्ष प्राप्त हुए हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि पद्मावती के नवनागों का धर्म समन्वयपरक है। भारत ने आज जिस धर्म निरपेक्षता को अपनाया है उसकी कल्पना नागों ने बहुत पहले से कर ली थी। उन्होंने जिस भारतव्यापी धर्म का सृजन किया था, वह आज भी अक्षुण्ण बना हुआ है।

६.२ नागों की विष्णु-पूजा

कहने के लिए तो नाग स्वयं को भारशिव कहने में विशेष गौरव का अनुभव करते

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

थे और इस प्रकार वे कट्टर शिव मतावलम्बी थे। किन्तु इस सम्बन्ध में कतिपय ऐसी बातों का उल्लेख किया जायगा जिससे यह सिद्ध होगा कि विदिशा के नवनागों पर भागवत धर्म की अमिट छाप थी। ऊपर इस बात का उल्लेख तो किया ही जा चुका है कि नागों ने अश्वमेध यज्ञ करने के उपरान्त ही पद्मावती जैसी राजधानी को प्राप्त किया था। दूसरी बात यह कि उनके सातवाहनों और वाकाटकों के साथ घनिष्ट सम्बन्ध थे। सातवाहन भागवत धर्मावलम्बी थे। अतएव नागों पर इस धर्म का प्रभाव पड़ना स्वभाविक था।

ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में हमें धर्म के समन्वयवादी रूप के दर्शन होते हैं। नागों ने शिव और विष्णु के समन्वित स्वरूप को अपनाया था। इस विचार को प्राथमिक रूप से पोषण देने वाले ग्रन्थों में महाभारत का नाम लिया जा सकता है। स्थान-स्थान पर हमें इस बात के संकेत मिलते हैं कि शैव और वैष्णव उपासनाओं में अत्यधिक समन्वय था। महाभारत के वनपर्व में देव सेनापति स्कन्द को 'वासुदेव प्रिय' नामक संज्ञा दी गयी है। यह इस बात की ओर संकेत करता है कि स्कन्द शैव और वैष्णव दोनों ही था। और तो और वनपर्व के एक अन्य उल्लेख में इस बात की ओर संकेत किया गया कि भगवान शंकर स्वयं विष्णु और वासुदेव का स्तवन करते हैं। वासुदेव कृष्ण महाभारत के अनुशासन पर्व में शंकर की उपासना करते हुए बताये गये हैं। वे उनसे वरदान प्राप्त करते हैं। एक अनोखी बात तो यह है कि शान्तिपर्व में भगवान शंकर स्वयं इस बात की घोषणा करते हैं कि उनमें और विष्णु में कोई भेद नहीं हैं। इसी कारण कुछ ऐसे शब्दों की रचना हुई जो शिव और विष्णु दोनों के लिए समान रूप से व्यवहृत होते थे। ऐसे शब्दों में स्थाणु, ईशान, रुद्र और स्वयं शिव भी हैं जिनका अर्थ शिव और विष्णु दोनों किया गया है।

भीष्मपर्व में एक ऐसा प्रसंग आता है जिसमें कृष्ण अर्जुन को दुर्गा की आराधना करने का मंत्र देते हैं तथा वनपर्व में अर्जुन पाशुपत् अस्त्र के लिए शंकर की आराधना करता है। शंकर, वासुदेव और अर्जुन की दिव्यता को प्रतिपादित करते हैं। इस उल्लेख के साथ विशेष-रूप से महत्वपूर्ण शब्द तो वे हैं जिनमें विष्णु स्वयं शंकर को निर्देशित करते हैं। उनका यह कहना कि जो आपको जानता है वह मुझे भी जानता है तथा जो आपकी उपासना करता है वह मेरी भी उपासना करता है। ये समन्वयवादी दृष्टिकोण के मूलमंत्र हैं। विष्णु के श्रीवत्स को शिव का त्रिशूल बताया गया। यह इस बात का ठोस प्रमाण है कि शिव और विष्णु में कोई अन्तर नहीं रह गया था।

इस युग के धर्म की आत्मा शिव और विष्णु की अभिन्नता ही थी। उदाहरण के लिए शुंग शैव भी थे और भागवत भी। इस समन्वयवाद की छाप साहित्य में प्रतिबिम्बित होती है। जैसे कि 'मृच्छकटिक' नाटक के आरम्भ में शिव का स्तवन किया गया है किन्तु उसके पाँचवें अंक के प्रारम्भ में केशव का स्मरण मिलता है। कालिदास शैव भी थे और वैष्णव भी इस बात का प्रमाण उनकी रचनाओं के मंगलाचरण तथा 'रघुवंश' और 'मेघदूत' एवं नाटकों की कथावस्तु से ध्वनित होता है। सातवाहनों के सम्बन्ध में भी यह बात आसानी से कही जा सकती है कि वे शिव और विष्णु दोनों की आराधना करते थे। स्वयं वाकाटक जो कि कट्टरपंथी शैव थे विष्णु में अपनी आस्था प्रगट करते थे। यह बात अभिलेखों के द्वारा भी सिद्ध

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हो जाती है। नागों के सम्बन्ध में तो यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उनकी आस्था शिव और विष्णु दोनों में थी। नागों के अभिलेख और उनके मुद्रा-चिह्नों से भी उनकी आस्था का बोध हो जाता है। वे भारशिव होने के साथ-साथ चक्रपाणी विष्णु के परम भक्त थे। वैदिक युग के प्रारम्भ से ही समन्वयवाद की यह लहर दौड़ रही थी।

कुछ नाग राजाओं की मुद्राओं पर हमें चक्र का चिह्न मिलता है। यह चक्र विष्णु के सुदर्शन चक्र के अतिरिक्त और क्या हो सकता है। विष्णु मूलतः तो सूर्य हैं। पद्मावती में विष्णु के मन्दिर के जो अवशेष मिले हैं उनमें विष्णु की प्रतिमा सूर्यध्वज तथा वहाँ के तोरणों पर अंकित पौराणिक कथाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि नाग विष्णु के परम भक्त थे। शिव के नन्दी को जो स्थान मिला है विष्णु के चक्र को भी ठीक वैसा ही महत्वपूर्ण स्थान मिला है।

हमें यह जान कर आश्चर्यमय प्रसन्नता होती है कि आज हमारे देश में जिस समन्वयवाद की आवश्यकता है नागों ने आज से लगभग १८०० वर्ष पूर्व उस समन्वयवाद के सही स्वरूप को समझा था और अपनाया था। इन्होंने हिन्दू धर्म की प्राण-प्रतिष्ठा करने में अभूतपूर्व योगदान दिया। दूसरे शब्दों में नवनागों को हिन्दू साम्राज्य के संस्थापक मान कर चलें तो कोई अनुचित बात न होगी।

इस युग में हिन्दुओं पर एक विशेष संकट आ गया था। शकों ने हिन्दुत्व को नष्ट करने का भरसक प्रयत्न किया और उनकी राष्ट्रीयता की जड़ खोद डाली। उन्होंने सामाजिक क्रान्ति लाने का भी प्रयत्न किया। वास्तव में वे हिन्दू राजाओं की सैनिक शक्ति से नहीं घबराते थे, क्योंकि उस पर तो उन्हें विजय मिल ही गयी थी किन्तु उन्हें हिन्दुओं की सामाजिक प्रथा से बहुत डर लगता था। अतएव वे जनसाधारण को अपने धर्म में दीक्षित करना चाहते थे। वे धन के लोभी तो थे ही, हिन्दुओं पर अब्राह्मण धर्म को लादने के भी उन्होंने अनेक प्रयत्न किये। किन्तु नवनागों के समन्वयवाद ने उनकी पूर्ण रूप से रक्षा की, और धार्मिक सद्भावना के सम्बन्ध में उन्हें पूर्ण सफलता मिली।

नागों के समय की विष्णु-मूर्ति मथुरा में मिली है। प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी ने इनको कृष्णकालीन बताया है। ये ऐसी मूर्तियाँ हैं जिनके विषय में यह कहा गया है कि ऐसी मूर्तियाँ भारत में अन्यत्र नहीं मिलतीं। इनमें विष्णु की चतुर्भुजी मूर्तियाँ भी हैं। एक इसी प्रकार की मूर्ति संख्या ९३३ के विषय में उनका मत है कि वह कृष्णकालीन बोधिसत्व प्रतिमाओं से मिलती-जुलती है। इसमें विष्णु के चारो हाथों में चार प्रकार के गुणों का समावेश हो जाता है। एक हाथ अभय मुद्रा में, दूसरे में अमृत घट, तीसरे में गदा और चौथे में पद्म। अमृत घट आनन्द की वर्षा करता है और जीवनी शक्ति प्रदान करता है। अभय मुद्रा के द्वारा वे भक्तों को अभय दान देते हैं। गदा उनके शासन का दण्ड है जिसके द्वारा वे दुष्ट शक्तियों का दमन करते हैं। मथुरा में प्राप्त विष्णु की एक अन्य मूर्ति की तुलना बोधिसत्व मैत्रेय से की जा सकती है। इसके अतिरिक्त विष्णु की दो अष्टभुजी मूर्तियाँ मिली हैं। ये भी कुषाणकालीन प्रतीत होती हैं, किन्तु ये मूर्तियाँ उत्कृष्ट कलाकृति की प्रतीक हैं।

नागों के पश्चात गुप्तकाल में तो विष्णु की अत्यधिक उपासना की गयी। एक मूर्ति तो उनकी ऐसी मिली है जिनमें उन्हें बुद्ध की भाँति ध्यानमुद्रा में दिखाया गया है। वे

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

राजा हैं, उनके सिर पर मुकुट सुशोभित है। इस मूर्ति के ऊपर एक छत्र भी है जिसे खिले हुए कमल एवं पत्तों से सजाया गया है। मूर्ति संख्या २५२५, विष्णु के नृसिंह वराह विष्णु अवतार का बोध कराती है। बीच में विष्णु मुख और दोनों ओर नृसिंह तथा वराह अवतारों के मुख दर्शाये गये हैं। एक मूर्ति ऐसी भी मिली है जिससे विष्णु के विराट रूप की झाँकी मिल जाती है। इनके अतिरिक्त मथुरा की मृण्मूर्तियों में भी विष्णु को स्थान दिया गया है। इससे इस देवता के व्यापक और प्रभावशाली स्वरूप का परिचय मिलता है।

पद्मावती और मथुरा के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी विष्णु की व्यापक रूप से उपासना की जाती थी। मूर्तियों में भी जो कि भारत के विभिन्न स्थानों पर मिलती हैं विष्णु के चतुर्भुजी स्वरूप को दर्शाया गया है। भारत के दक्षिण में जहाँ शिव को विशेष महत्व मिला वहाँ भी विष्णु को भुलाया नहीं जा सका।

६.३ शैवोपासना

जैसा कि पहले बताया जा चुका है इस युग में विष्णु और शिव दोनों ही देवताओं की उपासना होती थी। यह बता सकना बहुत कठिन है कि किस देवता की अधिक उपासना की जाती थी और किसकी कम। पद्मावती में तो विष्णु मन्दिर और विष्णु मूर्ति भी मिली है तथा भारशिवों द्वारा स्थापित किया गया शिवलिंग भी। भारशिवों ने तो शिव की उपासना के लिए अपने वंश के नाम में भी शिव को स्थान दिया था। वे स्वयं को शिव का नन्दी कहते थे। यही कारण है कि इनके सिक्कों पर भी नन्दी और वृष के दर्शन हो जाते हैं। सर्प जो कि शिव का आभूषण है, उसे भी स्थान मिल गया था। किन्तु नवनागों के राजाओं में भी हमें विष्णु और शिव के भक्त मिले हैं। कुछ राजाओं ने विष्णु की उपासना को विशेष महत्व दिया और कुछ ने शिव को। मध्यदेश के नाग ही नहीं वाकाटकों ने भी शिव को अपना देवता मान लिया था। शिव का यह प्रभाव इस युग में इतना व्यापक था कि कुषाण राजा भी अपनी मुद्राओं पर शिव-मूर्ति, त्रिशूल और नन्दी अंकित कराते थे। मथुरा और अवन्ति के शक क्षत्रप भी शिव के उपासक थे। लोक-जीवन में भी शिव की उपासना के चिह्न मिलते हैं। महाभारत में वासुदेव कृष्ण से भी शिव आराधना करायी गयी है। इस युग के साहित्य में भी शिव का गुणगान किया गया है। इसके अतिरिक्त मूर्तिकला एवं स्थापत्य कला में शिव को महत्वपूर्ण स्थान मिला था। नाग और वाकाटक काल में शिवमूर्ति और शिव मन्दिरों का निर्माण हुआ था। महाभारत में शैव उपासकों की दो श्रेणियाँ बतायी गयीं हैं, एक गृहस्थ और दूसरी साधक। शैव साधक पीले वस्त्र धारण करते थे और योग-साधना में अपना समय व्यतीत किया करते थे। महाभारत ने पूरे भारतवर्ष में फैले हुये शैव तीर्थों का उल्लेख किया है इससे इस विचार को आश्रय मिलता है कि शिव की उपासना बहुत व्यापक थी। पद्मावती के पूरे साम्राज्य में आराध्यदेव के रूप में भारशिवों ने शिव को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया था। इस विषय में तो कोई सन्देह रह ही नहीं जाता।

६.४ धन का भण्डारी कुबेर

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, इस काल में माणिभद्र यक्ष के साथ ही

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कुबेर की भी उपासना होने लगी थी। सार्थवाह धन प्राप्त करने के उद्देश्य से कुबेर की उपासना करते थे। कुबेर को यक्षों में सर्वशक्तिशाली समझा जाता है। इस काल में जो साहित्य-सृजन हुआ है उसमें कुबेर को महाराज कहा गया है। कुबेर की उपासना करने वाले महाराजिक कहलाते थे। कौटिल्य का उल्लेख है कि कुबेर-मन्दिर किले के मध्य में स्थापित होता था। कुबेर के मन्दिरों का निर्माण तो होता ही था, विदिशा में कुबेर के मन्दिर होने का उल्लेख डॉ० मोती चन्द्र ने किया है। कुबेर के मन्दिर धनधान्य से पूर्ण होते थे। कुबेर के उपासक इनमें बहुत अधिक धन अर्पित करते थे। सम्पूर्ण समाज यक्षों को विशेष कर माणिभद्र और कुबेर को बड़ा उच्च स्थान दिया करता था। कहीं-कहीं तो कुबेर को ब्रह्म और राजा का पर्याय तक माना गया है। समाज में यह धारणा अत्यधिक बलवती थी कि कुबेर के पास अलौकिक शक्तियाँ होती हैं। यक्षों को विद्या का देवता भी बताया गया है। समाज में बड़े-बड़े आचार्यों को यक्ष की उपमा दी जाती थी। उपनिषदों में भी यक्ष को ब्रह्म कह दिया गया है। यक्षों की इस सर्वव्यापी उपासना के कारण ही विदिशा, पद्मावती एवं मथुरा में यक्ष और कुबेर की मूर्तियाँ मिली हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि इन स्थानों पर उसके उपासकों की संख्या बहुत अधिक थी।

६.५ सार्थवाहों के आराध्य यक्ष

इस युग में, समाज में शिव और विष्णु के उपासक तो थे ही, सार्थवाहों के समाज में यक्ष को विशेष स्थान मिला था। पद्मावती में प्राप्त माणिभद्र यक्ष की चरणचौकी पर अंकित लेख में इस बात का उल्लेख किया गया है कि शिवनन्दी के समय में नगरजन समुदाय ने मिल कर इस यक्ष की स्थापना की थी। पद्मावती तत्कालीन महापथों का एक विशाल केन्द्र थी। एक प्रकार से यह अन्तर्राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित थी। आते-जाते यात्रीगण यक्ष की उपासना करते थे और व्यापारिक लाभ प्राप्त करने और अपनी यात्रा को सुगम बनाने के लिए यक्ष पर बहुत-सा धन चढ़ाते थे। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के मतानुसार नाविकों की देवी मणिमेखला थी और स्थल पर चलने वाले सार्थवाहों के अधिष्ठाता देवता माणिभद्र यक्ष थे। डॉ० अग्रवाल यहाँ तक कहते हैं कि माणिभद्र यक्ष की पूजा के मन्दिर सारे उत्तरी भारत में बने हुए थे। नागों की दूसरी राजधानी मथुरा के अन्तर्गत 'परखम' नामक स्थान से एक महाकाय यक्ष की मूर्ति मिली है। यह यक्ष माणिभद्र यक्ष ही है। पद्मावती में तो माणिभद्र यक्ष की पूजा का बड़ा केन्द्र होना ही चाहिए और यह एक विशाल तीर्थ-स्थान रहा होगा। दूसरे महापथों के केन्द्र पर स्थापित होने के कारण सार्थ वहाँ आते-जाते इसकी पूजा करते होंगे। जो सार्थ उत्तर भारत से दक्षिण भारत में यात्रा करते थे तथा जो दक्षिण से उत्तर में जाया करते थे वे माणिभद्र यक्ष की मान्यता में विश्वास करके इसको पूजते होंगे। महाभारत के वन-पर्व में भी एक ऐसा प्रसंग आया है जिसमें इस बात का उल्लेख किया गया है कि माणिभद्र यक्ष का स्मरण एक सार्थ के उन सदस्यों ने संकट निवारण के लिए किया था जो कि दमयन्ती को मिले थे। यहाँ इस बात का भी उल्लेख किया गया है कि सार्थों पर जब वास्तविक संकट उपस्थित हुआ तो उन्होंने माणिभद्र यक्ष के साथ-साथ कुबेर का भी स्मरण किया। यह बात तो निश्चय के

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

साथ कही जा सकती है कि सार्थवाहों में यक्षों के प्रति अटूट श्रद्धा थी। जिस प्रकार पद्मावती में माणिभद्र यक्ष की प्रतिमा मिली है वैसी ही महापथों के एक अन्य केन्द्र विदिशा में कुबेर की मूर्ति मिली है। डॉ० मोतीचन्द्र ने यह अनुमान लगाया था कि विदिशा में कुबेर का मन्दिर होगा। इस मूर्ति के मिलने से उनका यह विचार सही प्रतीत होता है। इस प्रतिमा के सहारे एक अन्य विचार भी सत्य प्रतीत होता है, वह यह कि विदिशा में जो कल्प-वृक्ष-स्तम्भ प्राप्त हुआ है वह कुबेर के इस मन्दिर का ही होगा। ये सार्थवाह धनधान्य सम्पन्न थे इसमें तो कोई संदेह नहीं। कुबेर धन का भण्डारी माना जाता है और कल्पवृक्ष प्रत्येक प्रकार की मनोकामना को पूर्ण कर देता है। इसी आशय को ले कर सार्थवाहों ने धन प्राप्त करने की कामना के साथ इस मन्दिर का निर्माण कराया होगा। कहा जाता है कि धन-कमाना इन सार्थवाहों का मुख्य उद्देश्य रहता था। किन्तु ये मुक्तहस्त से दान भी करते थे। स्वदेश लौटने पर ये सवा पाव-सवा मन तक सोने का दान करते थे। इससे इनकी धन सम्पन्नता और दानशीलता का परिचय मिलता है।

६.६ उपासनाओं का समन्वय और हिन्दू धर्म का उदय

इस युग में एक संकटकाल जैसी परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी और विदेशी आक्रमणों से जूझने की स्थिति अधिक निकट आ गयी थी। विष्णु, शिव, वराह, कूर्म और मत्स्य आदि के उपासकों में अब कोई दूरी नहीं रह गयी थी और सभी एक धरातल पर बैठ कर एक जैसे प्रयत्न में लीन हो गये थे। महाभारत के अनेक प्रसंगों में शिव और विष्णु की उपासना एक साथ किये जाने का उल्लेख है। परशुराम को ऋग्वेद रुद्र ऋषि कहता है किन्तु इस युग में वे विष्णु का अवतार कहलाये। भवनाग के द्वारा विष्णु पद पर विष्णु-ध्वज की स्थापना एक ऐसा ही कदम है जिससे शिव और विष्णु के समन्वय का आभास होता है। शैव सातवाहनों के शिलालेखों में विष्णु में भक्ति भी इसी ओर संकेत करती है। जो ब्राह्मण यह समझने लगे थे कि यज्ञ करने के पश्चात् उन्हें ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हो गयी है वे वराह, कूर्म आदि में विष्णु का दर्शन करने लगे थे और यह मानने लगे थे कि वे ऐसे देवता हैं, जिन्होंने वेदों और पृथ्वी का उद्धार किया है।

अतएव ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों के इस युग को हम ऐसा युग मान सकते हैं जिसमें हिन्दू धर्म का प्रादुर्भाव एक ऐसे रूप में होता है जो जनमानस और आशा का संदेश फूंक देता है। इस धर्म में यद्यपि वैविध्य के दर्शन तो होते हैं फिर भी यह भारत की उस मूल-भूत सांस्कृतिक और धार्मिक एकता का चित्र प्रस्तुत करता है जो आज तक अक्षुण्ण चला आ रहा है। वह एकता आज भी वैसी ही बनी हुई है, जिसकी नींव इस युग में पड़ चुकी थी।

६.७ गाय की पवित्रता

भारत में आज भी गाय को अत्यन्त पवित्र स्थान प्राप्त है। गो के प्रति पूज्यभाव की जड़ें नागवंश के इस साम्राज्य के समय में ही जम चुकी थीं। गुप्तकाल में जो शिलालेख तैयार किये गये थे उनमें गाय तथा सांड़ को पवित्र स्थान दिया गया है। किन्तु

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यह पवित्रता एकाएक उत्पन्न हो गयी हो, ऐसी बात नहीं। यह बात सही है कि गुप्तों ने नागों के अन्य कई अवशेषों को अपना लिया और उन्हें आदरपूर्ण स्थान दिया। साथ ही उन्होंने गाय को भी नहीं भुलाया। भारशिव तो स्वयं को शिव का नन्दी मानने में गौरव का अनुभव करते थे। हमें इस बात का भी पता चलता है कि कुषाणों ने गाय और साँड़ को कोई विशेष स्थान नहीं दिया था। यहाँ तक कि उनकी पाकशाला में तो साँड़ मारे जाने लगे थे। किन्तु गुप्तकाल में इन प्राणियों पर दया दिखायी गयी और ऐसे अनेक प्रयत्न किये गये जिनसे इनकी रक्षा की जा सके। यद्यपि यह बात भी सच है कि गाय की इस पवित्रता की भावना को निरन्तर धक्के लगते रहे किन्तु यदि हिन्दू धर्म में उनका आज भी जो स्थान बना हुआ है उसका श्रेय भारशिवों को मिलना चाहिए। उन्होंने पद्मावती और मथुरा तथा कान्तिपुरी में अपनी राजधानियाँ बनायीं और गाय की पवित्रता को अपने धर्म में प्रमुख स्थान दिया।

६.८ नागर लिपि

ऐसा अनुमान लगाया जाता है और वह किसी अंश तक सही भी जान पड़ता है कि नागरी लिपि का यह नाम नागों के राजवंश के कारण ही पड़ा होगा। कहने के लिए तो नागरी लिपि के उद्भव के अन्य कारण भी बताये गये हैं किन्तु इसका जन्म मध्यदेश में हुआ था और मध्यदेश नागों के संरक्षण में रहा था। इस कारण नागरी लिपि पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से नागों का प्रभाव पड़ा था। डॉ० काशी प्रसाद जायसवाल का मत है कि अक्षरों पर शीर्ष रेखा लगा कर लिखने की प्रथा का आविर्भाव और विशेष प्रचलन नागों के शासन काल में ही हुआ था। इसके प्रमाण में उन्होंने पृथ्वीसेन प्रथम के समय के 'नचना' और 'गंज' के शिलालेखों का उल्लेख किया है। इन शिलालेखों को पृथ्वीसेन द्वितीय के मानने में उन्होंने अपनी असहमति प्रकट की है। उनके अनुसार "ऐपीग्राफिया इण्डिका, खण्ड १७, पृष्ठ ३६२, में जो यह एक नयी बात कही गयी है कि नचना और गंज के शिलालेख पृथ्वीसेन द्वितीय के हैं उससे मैं अपना मतभेद जोरदार शब्दों में प्रकट करता हूँ। मैंने उनकी लिपियों का बहुत ध्यानपूर्वक मिलान किया है और यह स्थिर करना असम्भव है कि ये ईसवी चौथी शताब्दी के बाद के हैं। इन लेखों के काल के सम्बन्ध में फ्लीट का जो मत था वह बिल्कुल ठीक था। पृथ्वीषेण द्वितीय के प्लेटों से यह बात स्पष्ट रूप से प्रकट होती है 'नचने' वाला पृथ्वीषेण उससे बहुत पहले हुआ था।"[१]

वाकाटक शिलालेखों में अक्षरों को ऊपर की ओर संदूकनुमा शीर्ष रेखा से घिरे हुए बताया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपने वर्तमान रूप में नागरी लिपि आठवीं शताब्दी के लगभग विकसित हो पायी होगी। प्रारम्भ में तो संदूकनुमा शीर्षरेखा वाले अक्षरों सम्बन्धी लिपि ईसा की चौथी और पाँचवीं शताब्दी के लगभग प्रचलित थी। उसे ही नागरी लिपि का नाम दिया गया था। इस सम्बन्ध में एक अन्य बात भी विचारणीय है। वह यह कि इस प्रकार की लिपि का सर्वाधिक प्रचलन ऐसे स्थानों में मिलता है जहाँ नागों का शासन

१. अन्धकारयुगीन भारत—पृष्ठ १२।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

था। ऐसे स्थानों में विशेषकर मध्यदेश का नाम उल्लेखनीय है। इसी सम्बन्ध में मध्यदेश के भेड़ाघाट के एक शिलालेख का उल्लेख किया गया है। यह नागकाल के पहले का बताया जाता है। यह साधारण ब्राह्मी लिपि में है। इस काल में ब्राह्मी लिपि की विशेषकर 'इ' की मात्रा का विकास हुआ। हलन्त के चिह्न का प्रयोग भी इसी युग की देन प्रतीत होती है। इसी प्रकार इस युग में 'उ' की मात्रा भी स्पष्टतर होती है। इसी युग में 'र' का रेफ भी पंक्ति के ऊपर रखा जाने लगा था। मात्राओं में शनैः-शनैः तिरछापन भी आने लगा था। देवनागरी के वर्तमान 'ढ' की रचना भी इसी युग की देन प्रतीत होती है। अतएव यह कहा जा सकता है कि नागरी 'लिपि' के परिष्कृत रूप की रचना का शुभारम्भ इसी युग से होता है।

६.६ पद्मावती : एक पर्यवेक्षण

पद्मावती की उक्त चर्चा के द्वारा तत्कालीन समाज के राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन का एक आदर्श चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित होता है। जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है—भारशिवों का राज्य एक प्रजातांत्रिक संघ-राज्य था। सम्पूर्ण समाज का कल्याण व्यक्ति के कल्याण पर आधारित था। व्यष्टि और समष्टि के कल्याण में कोई मूलभूत अन्तर नहीं था। समाज व्यक्ति के लिए था और व्यक्ति समाज के लिए। राज्य व्यक्ति की उन्नति की आधार-शिला मान कर चलता था। नवनाग वंश के सभी राजा कला-प्रेमी थे। उनके राज्य में धन का किसी प्रकार अभाव नहीं था। उन्होंने अपने और समाज के जीवन में धार्मिक प्रवृत्तियों को विशेष प्रश्रय दिया। उन्होंने सादा और त्यागशील जीवन को आदर्श मान कर अपने व्यहार को उसी के अनुसार बना दिया। उनके समय में पद्मावती ने अपने चरमोत्कर्ष के दिन देखे थे। ऊँचे-ऊँचे भवनों से सुशोभित यह अनुपम नगर आज केवल कल्पना मात्र रह गया है। मुख्य मार्ग पर स्थित होने के कारण इस नगर की ख्याति उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक फैल गयी थी। पद्मावती उस समय के एक आदर्श समाज का चित्र प्रस्तुत करता है। व्यक्ति को गौरवमय स्थान मिला हुआ था। वह स्वेच्छानुसार धर्म का आचरण कर सकता था। कोई व्यक्ति किस धर्म का पालन करे, इसका सम्पूर्ण निर्णय उसी पर निर्भर था। पद्मावती अन्य धर्मों को उचित स्थान देते हुए भी एक आदर्श हिन्दू राज्य का चित्र प्रस्तुत करता है।

पद्मावती शिक्षा का महान केन्द्र था। यहाँ भारत के अन्य राज्यों से अध्ययन करने के लिए छात्र आया करते थे। नदियों के संगम पर स्थापित इस नगर को प्रकृति का वरदान तो मिला ही हुआ था, यहाँ ज्योतिष, दर्शन, धर्मशास्त्र एवं साहित्य आदि की विशेष शाखाओं की उच्च शिक्षा प्रदान की जाती थी। इसका बोध हमें 'मालती-माधव' के उल्लेख द्वारा हो जाता है, जो न्याय-शास्त्र का अध्ययन करने के लिए विदर्भ से पद्मावती आया था। शिक्षा का केन्द्र होने के कारण पद्मावती समस्त देश के लिए एक आकर्षण का केन्द्र बन गयी थी। उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैल चुकी थी। ज्ञान के प्रचार एवं प्रसार में राज्य का पूरा-पूरा योगदान रहता ही था, व्यक्तियों के सामाजिक संगठन की दृष्टि शिक्षा पर भी केन्द्रित रहती थी, इसके भी प्रमाण मिलते हैं।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धर्म एक स्वेच्छापूर्ण अन्तःकरण की वस्तु होते हुए भी भारशिवों ने अपने आचरण एवं प्रचार के द्वारा सम्पूर्ण समाज के सम्मुख धर्म का एक ऐसा चित्र प्रस्तुत किया कि व्यक्तियों ने स्वेच्छापूर्वक उस धर्म को स्वीकार कर लिया। समाज में शिव और विष्णु की उपासना की एक प्रबल लहर दौड़ गयी। धर्म से विजातीय तत्वों को निकाल फेंका गया और समाज ने हिन्दू धर्म के उस स्वरूप को प्रतिस्थापित किया जो शताब्दियों के थपेड़ों के बाद भी अक्षुण्ण बना रहा। भारशिवों ने जिन सामाजिक और धार्मिक आदर्शों को अपनाया वे आज भी हिन्दुत्व की रक्षा कर रहे हैं।

साधारणतः विजित राज्यों की प्रजा के जीवन के आदर्श विजेताओं के आदर्शों के अनुसार बदल जाते हैं किन्तु भारशिवों के सम्बन्ध में हमें ज्ञात होता है कि गुप्तों ने पद्मावती के राजा और प्रजा दोनों के जीवनादर्शों को बड़े गौरव के साथ अपनाया था। उन्होंने भारशिवों से विवाह सम्बन्ध किये और उनकी प्रशस्ति को अपने शिलालेखों में स्थान दिया। इसी प्रकार वाकाटकों के लेखों में भी भारशिवों की प्रशंसा मिलती है। इसका एक मात्र कारण भारशिवों की श्रेष्ठता और प्रजा पर उसके प्रभाव के अतिरिक्त और क्या हो सकता है। भारशिवों ने कभी राज्य लोलुपता नहीं दिखायी। वे एक सच्चे मानवधर्म के प्रचार कार्य में लगे हुए थे, व्यष्टि के कल्याण में उनकी आस्था थी, जिसके लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहे।

पद्मावती उस समय का एक धार्मिक संस्थान थी। यहाँ शिव और विष्णु के मन्दिर मिले हैं, माणिभद्र यक्ष की मूर्ति मिली है और एक शिवलिंग की प्राप्ति हुई है। इस बात का भी प्रमाण मिलता है कि उस काल में सूर्य की उपासना भी की जाती होगी। शिव की उपासना उत्तर से ले कर सुदूर समुद्र तट तक व्यापक हो चली थी। त्रिशूलधारी शिव मानव के लिए कल्याणकारी थे। इस समय तक पद्मावती पर बौद्ध-धर्म का प्रभाव शिथिल और हिन्दू-धर्म के सर्वव्यापक स्वरूप का प्रभाव गहरा होता जा रहा था। धर्म का समन्वयवादी स्वरूप इस युग में अपना प्रभुत्व स्थापित कर रहा था और समाज ने इसी स्वरूप को अनेक शताब्दियों तक स्वीकार किया। पद्मावती के जीवन-दर्शन की यह अमूल्य देन है।

मुख्य मार्ग पर स्थित पद्मावती ने तत्कालीन सांस्कृतिक जीवन को नयी दिशा देने में अभूतपूर्व योगदान दिया है। सादा जीवन उच्च विचारों की परिकल्पना भारशिवों ने की थी। वे सत्ता से निर्लिप्त रहने का प्रयास करते रहे। यद्यपि उन्होंने प्रजा के आर्थिक विकास में पूरा-पूरा सहयोग दिया। व्यक्तियों के जीवन को उन्नत बनाने का प्रयत्न भी किया गया किन्तु व्यक्ति को आत्म-विकास के लिए स्वतंत्र रूप से अनेक अवसर मिलते थे। कुछ प्रतिष्ठित और सम्पन्न व्यक्ति मिल कर धार्मिक कृत्यों में हाथ बँटाते थे। माणिभद्र यक्ष की स्थापना ऐसे ही व्यक्तियों ने की थी। धनी और सम्मानित पुरजन दान देने में आस्था रखते थे और सामाजिक जीवन को सुरुचिकर बनाने में पूरा-पूरा सहयोग देते थे।

सांस्कृतिक संस्थान और धार्मिक स्थल होने के साथ-साथ पद्मावती व्यापार का एक प्रमुख केन्द्र था। मुख्य मार्ग पर स्थित होने के कारण सार्थवाह यहाँ ठहरते थे और वस्तुओं का आदान-प्रदान होता था। यही कारण है कि ईसा के प्रारम्भिक तीन-चार शताब्दियों में पद्मावती ने आर्थिक समृद्धि के वे दिन देखे जो आज भी नहीं भुलाये जा सकते हैं। कलाओं

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

में भी नागरिकों की श्रेष्ठता अप्रतिभ थी। आज भी जो अवशेष मिले हैं उनसे इस समय की कला की उत्कृष्टता प्रमाणित हो जाती है।

पद्मावती ने भारशिवों के शासन-काल में जीवन के वे गौरवशाली दिन बिताये। कालान्तर में उसकी ख्याति धूमिल होती गयी है। मध्य काल में यद्यपि स्थापत्य कला के कुछ नमूने तैयार हुए और व्यक्तियों ने सौन्दर्य के प्रति अपने आकर्षण को निरन्तर बनाये रखा, किन्तु उत्तर मध्यकाल तक आते-आते पद्मावती की ख्याति खण्डहरों में समा चुकी थी। वर्षों तक लोग उसे पहचान न पाये कि वर्तमान पवाया ही प्राचीन पद्मावती नगर था जो कभी अत्यन्त वैभवशाली रह चुका था। कहते हैं कि बारह वर्ष में घूरे के दिन भी पलटते हैं। बारह नहीं बारह सौ वर्षों में सही, पद्मावती के उस प्राचीन गौरव का स्मरण किया गया। पवाया के भग्नावशेष आज भी विदीर्ण हृदय में उस काल की स्मृति को सँजोये हुए हैं जब पद्मावती मध्यदेश का एक ख्यातिप्राप्त नगर था जिसकी गणना समस्त भारतवर्ष के कुछ गिने-चुने नगरों में की जाती थी।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची

१—भारत की पुरातत्वीय सर्वेक्षण रिपोर्ट, सन् १९१५-१६

२—न्यू नागा कॉइन्स : ए० एस० अल्टेकर

३—कॉइन्स ऑफ ऐन्शियेन्ट इण्डिया : ए० कनिंघम, लंदन, १८९१

४—अधकारयुगीन भारत : काशी प्रसाद जायसवाल

५—जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी : रेप्शन

६—अर्ली हिस्ट्री ऑव इण्डिया : वी० स्मिथ

७—गुप्त इंस्क्रिप्शन्स : फ्लीट

८—एपिग्राफिया इण्डिका : म्यूइर्स, खण्ड ११

९—पुराण टेक्स्ट : पारजिटर

१०—कैटेलॉग ऑफ कॉइन्स, वी० स्मिथ

११—इण्डियन ऐन्टिक्वरी, खण्ड १८

१२—दि हिन्दू इमेज : वृन्दावन भट्टाचार्य

१३—कैटेलॉग ऑफ दि कॉइन्स ऑफ दि नागा किंग्ज ऑफ पद्मावती : s/o ह० नि० त्रिवेदी

१४—खजुराहो के शिलालेख

१५—मध्य भारत का इतिहास : s/o ह० नि० द्विवेदी

१६—मथुरा : डॉ० कृष्णदत्त वाजपेयी

१७—सरस्वती कंठाभरण : कवि भोज

१८—मालती-माधव : भवभूति

१९—हर्ष चरित : बाणभट्ट

२०—थियेटर ऑफ दि हिन्दूज : विल्सन, खण्ड २

२१—पद्मावती सार आणि विचार : एन० वी० लेले

२२—भारत-भारती : मैथिलीशरण गुप्त

२३—असुर इण्डिया : अनन्त प्रसाद बनर्जी, पटना, १९२६

२४—सार्थवाह : मोतीचन्द्र, पटना १९५३

२५—ए न्यू हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन पीपुल, खण्ड ६

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२६—गुप्तकालीन मुद्राएँ : **अल्टेकर**, पटना १९५४
२७—दि कल्चरल हेरिटेज ऑफ मध्यभारत : **डी० आर० पाटिल**, ग्वालियर १९५२
२८—दि वाकाटक गुप्ता एज : **अल्टेकर तथा मजूमदार**, देहली
२९—भारतीय सिक्के : **वासुदेवशरण उपाध्याय**, प्रयाग, संवत २००५
३०—संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर : **रामचन्द्र वर्मा**
३१—तकनीकी शब्दावली, भारत सरकार

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सूचकांक

अ

अच्युत ३१, ३६, ६६
अन्धकारयुगीन भारत १६, २६, ३२, ७५
अफगानिस्तान ४७
अर्जुन ७०
अर्जुनायन ३१ ,३४
अल्बरूनी १६
अल्तेकर १८, २६, २८, ३४, ५६
अवध ५६
आगरा ५६
आमेर ३१
आर्यावर्त ३१, ३५

इ

इन्द्रपुर ३५
इन्दौर ३५
इलाहाबाद १८, ३४

उ

उज्जयिनी १६, ५७
उज्जैन ४, ३६
उत्तरी भारत १६
उदयगिरि ५२, ६५

ऊ

ऊनेहरा ६५

ए

एपीग्राफिया इंडिका १३, १४, ७५

ओ

ओड़छा २८,६२
औरंगाबाद ४

क

कछवाहा ५, ३२
कथासरित सागर १७
कपिशा ४७
कनिंघम ३, ४, ७, ११, ५३, ५८
कनिष्क १४, ६६
कंतित ३
कयना २८
करेरा २
कलकत्ता ५६
कश्यप ऋषि १
कांची ३०
कान्तीपुरी ३,१४, ८, १७, २०, २२, २३, २५, २६, ३३ ,७५
काबुल ४७
कामदेव १०
कामन्दकी ६
कार्पस इंस्क्रिप्शंस ऑफ इंडिका २६
कालीदास ७०
काशी ४७, ६८
काशीप्रसाद जायसवाल ८, १३, १४, १७, १६, २०, २३, २५, २६, २७, २८, ३१, ३३, ३४, ५७, ५६, ६५, ६८, ७५
काश्मीर १६
कीचक ५५
कुणिन्द १७
कुतवार ३, २५
कुबिन्द ३४

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कुबेर ४४, ४५, ७२, ७३, ७४
कुबेरनाग ३२, ३४
कुषाण १४, १५, १६, १७, १८, २०, ३४, ३७, ४०, ४१, ५६, ६६, ७५
कुषाण कालीन ४७, ७१
कुषाण क्षत्रप २३
कुषाण वंश २५
कुषाण शासन १६
केशव ७०
कैवर्तो १५
कोलारस २
कोंडा ४१
कॉइंस ऑव एन्शियेण्ट इंडिया ५८
कॉइंस ऑव मिडियवल इंडिया ५६
कौटिल्य ७३
कौमुदी महोत्सव ३३, ३४
कौशाम्बी १६, ३१, ५७, ५६
कृष्ण ७०
कृष्णदत्त वाजपेयी ३७, ४४, ४७, ६६, ७१

ख

खजुराहो का शिलालेख १२
खनाग २१
खरपरक ३१
खोह ६५

ग

गंगा ४, ८, २०, ५३, ५७, ६८
गजेन्द्र ३१
गंज ७५
गणपति २२, २४, ३७
गणपतिनाग ७, १८, १६ ,३१, ३३
गणेन्द्र २२, ३३
गणपेन्द्र ३०, ३१, ३३
गणेश १०, ६५
गन्धर्व मिथुन ४१
गरुड़ध्वज ४२
गर्ग संहिता १७
गिबन १५
गुप्तकाल ७, ५२, ७४
गुप्तकालीन ४५
गुप्तवंश ३०
गुप्तवंशीय शिलालेख २३
गुप्त साम्राज्य ५०
गोदावरी १०
गोनर्द तृतीय १६
गौतमीपुत्र १८, २८
ग्वालियर २, ५६, ५६, ६६

च

चणक ६५
चन्देरी ६६
चन्द्रगुप्त ३२
चन्द्रवर्मा ३१
चन्द्रांश ३७
चम्मक ६६
चरजनाग १२, २१, ५६
चित्तौर १

छ

छिदोरी ६१

ज

जयदेव १
जरत्कारु १
जानखट १३, २६, ५२, ५३
जायसी १

झ

झाँसी १

ट

टाकवंश ३१, ३४
टाकवंशीय ३३

ड

डबरा २

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त

तहरोली २८
ताड़वृक्ष १३, १६
ताड़स्तम्भशीर्ष ५८

त्र

त्रयनाग २०

थ

थियेटर ऑव द हिन्दूज ४

द

दक्षिणपथ ३१
दक्षिणनन्दी २७
दमयन्ती ७३
दशार्ण २८
दशाश्वमेध घाट ६८
दिनेशचन्द्र सरकार २८, २६, ६८
दि जर्नल ऑव न्युनिस्मेटिक सोसायटी ऑव इंडिया ६८
दिल्ली सल्तनत ५
दि हिन्दू इमेजेज़ ४१
दुगरई २८
दुर्गा ७०
देव १६, २२, २४
देवेन्द्र २२
देवगढ़ ५३
देवनाग २७
द्रोणा ६

ध

धन्यपाल ५
धमकन २
धुन्दपाल ५
धूमेश्वर महादेव ६२, ६३

न

नगवा ६८
नगरदेवी ५
नचना ६५, ७५
नन्दी २३, २४, २६, २६, ३७, ४५, ६६, ७१
नरवर ४, ५, ७, ११, ३२, ६२, ६६
नवनाग २, ३, १८, २०, २२, २३, २४, ३४, ३७, ५७, ६८, ७०, ७६
नाग १८, ३३, ३७, ४४, ५२, ५४, ६६, ६८ ६६, ७१, ७५
नागक्षत्र ५२
नागकालीन सिक्के १२
नागदत्त ३१, ३५
नागराज ११, ३१
नागरलिपि ७५
नागराजा ६४
नागरी प्रचारिणी पत्रिका ४७, ६८
नागवंश ६, २२, २७, ६४, ७४
नागवंशीय २६, २८, ४६, ५१, ६७
नागवंशीय सिक्के ५६
नागशासन ४५
नागसेन ८, ३१, ३२, ३३
नागोद ६५
नून ११
नृसिंह ७२

प

पचपेडिया २
पंजाब ३७
पटना १
पदावली ३
पदम पवाया १, २, ५, ३६
पदमपुर ४
पद्मा ६
पद्मावत १
पन्ना १
परखम ४५
परमार भोज ११
परमार वंश ५
परशुराम ७४
पल्लवों ३०

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पवाया ६, ११, २३, ३२, ३६, ४१, ४२, ४४, ४५, ४८, ५०, ५१, ५५, ५६, ६१, ६२, ६६, ७८
पांचाल ३४
पांचीरा ६१
पार्जिटर १३, १४, १६
पारा ४, ६, ११
पार्वती १०, ३६, ४७, ६२, ६६
पिछोर २
पुण्यपाल ५, ३२
पुंनाग १६, २२, २७
पुण्यपाल ३२, ६२
पुराण ३, ७, ८, १२, १४, २०, २३, २४, ३३, ४५, ५३, ५५
पुरातत्वीय सर्वेक्षण रिपोर्ट ५३
पुरिका २६
पुराण टेक्स्ट १६
पुलिन्द १५
पूर्वी पंजाब १७
पोहरी २
पृथ्वीराज चौहान ६२
पृथ्वीसेन ३२, ७५
प्रभाकर १६, २२, २४
प्रभाकरनाग २७
प्रभावती ३२
प्रयाग ६, ८, २२
प्रवरसेन १८, २८, ५३, ६६
प्रार्जुन ३१
प्रिन्सेप २६

फ

फरूखाबाद १३, २६
फीरोजपुर ५४
फ्लीट २३, ७५

ब

बंग ३०
बदरवास २
बनाफर १७
बरार ४, २८
बर्हिननाग १६, २१
बलिवर्मा ३१
बसुनाग २१
बिबस्फाटि १४
बिहार १५
बुद्ध ५४
बुन्देलखण्ड १५
बुलन्दशहर ३५
बुहलर १४
बेतवा २६
बेसनगर ३६, ४५
ब्रह्मा ४७, ५७
ब्रिटिश संग्रहालय ५७
बृहस्पतिनाग २६

भ

भगवान शंकर ७०
भव २६
भवनाग १८, २२, २७, २८, २६, ३०, ५६, ६६, ७४
भवभूति ४, ६
भाकुल ६५
भागलपुर ४
भागवत १५, १६, २३, ७०
भागिनेय ३७
भाद्रक ३१
भारत ७२
भारशिव १६, १७, १८, १६, २०, २३, २४, २८, ३४, ३५, ४१, ५३, ५८, ५६, ६५, ६८, ७१, ७५, ७६, ७७
भावशतक ३१, ३४
भितरवार २
भीमनाग २१, २४, २६

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भेड़ाघाट ७६
भूतनन्दी २३
भूमरा ५५, ६४, ६५, ६६

म

मगध ८, १५
मंगोल १५
मत्तिल ३१, ३५, ३७
मत्स्य पुराण ४१
मधुमती ४, १०, ११
मध्यदेश २८, ३४, ३७, ४६, ६६, ७६, ७८
मध्यप्रदेश १७
मध्यभारत का इतिहास ३७, ४७, ६३
मथुरा ३, ४, ८, १४, १६, १७, २२, २३, २५, २६, ३३, ३४, ३७, ३८, ४१, ४४, ४५, ४७, ४८, ५४, ६६, ७१, ७२, ७३, ७५
मनसादेवी १
महरोली २६
महाभारत ५३, ५४, ७०, ७२, ७४
महुवा ११
महुवर ५२
महेश्वर नाग ३५
मागध २२, ३४
माणिभद्र [मणिभद्र] यक्ष ४२, ४३, ४४, ४५, ७२, ७३, ७४, ७७
माधव ६
मानवाकार नन्दी ४५, ४६
मालती ६
मालती माधव ४, ७, ६, ११, ५२, ६२, ७६
मालती माधव सार आणि विचार ४
मालव १७, ३१, ३४
मिर्जापुर ३
मुरेना २५
मूलक २८
मेघदूत ७०
मेधलीशरण ५१
मोतीचन्द ७३
मो० बा० गर्दे ५, ४३, ५४, ५५, ६३
मोशिये मोनिये ४३
मृच्छकटिक ७०

य

यदुवंश ३४
यदुवंशी ३३
यमुना ४७, ५२, ५३
यूनानी ३७
योधेय १७, ३१, ३४

र

रघुवंश ७०
रतनसेन १
रविनाग २२, २६
राजघाट ४७
राजस्थान १७
रामचन्द्र ५७
रामदात ५७
रायपुर २
राहुल सांकृत्यायन ४७
ऋग्वेद ७४
ऋषि ७४
रुद्र ७०, ७४
रुद्रदेव ३१, ३७
रुद्रसेन ३२
रेप्सन ५७, ५८

ल

लखनऊ ६८
लवणा ४, ६
लाहौर ३५
लिच्छिवि ३०

व

वनस्पर १४, १५, १६, २५

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वसुनाग २५
वसुनागेन्द्र २१, २५
वाकाटक १८, २८, ३१, ३२, ४१, ६८, ७२, ७५
वागाट २८
वाणभट्ट ८, ३२
वामनन्दी २१, २६, ३०
वायुपुराण १६
वाशिष्क कुषाण २५
वासुदेव १४, २५, ६६
वाहलीकों २६
वासुदेवशरण अग्रवाल ४७, ७३
वासुदेवी ७०
वाह्लिकों ३०
विजौर २८
विदर्भ ४, २८
विदिशा १३, १५, १७, १८, २२, २८, २६, ३४, ५३, ५४, ६५, ६६, ७०, ७३, ७४
विन्ध्य अंचल १८
विन्ध्य-क्षेत्र ६६
विन्ध्य प्रदेश १७
विन्ध्य-शक्ति २८, २६, ३०, ३३
विन्सेट स्मिथ २७, ५८
विभुनाग १८, १६, २१, २४, २५
विमकैडफाइसिस ६६
विल्सन ३, ४, १०
विष्णु २६, ३०, ५१, ६४, ६५, ६६, ७१, ७२, ७४, ७७
विष्णु पुराण २, ३, ४, ८, १५, १६, २३
विष्णु पूजा ६६
विष्णु मूर्ति ५०
विश्वस्फटि १४
वीरसिंह ६२
वीरसेन १३, १४, २१, २२, २४, २५, २६, ३१, ३३, ४६, ५४, ५७
वेद १०
व्याघ्र २१, २४, २५
वृन्दावन भट्टाचार्य ४१
वृषनाग २१, २४
वृहद संहिता २८

श

शक १४, १६, ३७
शिव १६, २३, २७, २८, ३०, ४६, ५२, ६५, ६६, ७०, ७२, ७४, ७७
शिवनन्दी १७, २३, ४३, ४४, ५७
शिवलिंग २३, ४०, ५२, ६६, ६६
शिशुचन्द्रदात ५७
शिशुनन्दी ५७
शिशुनाग ६८
शुंग १८, २२
शेषदात ५७
शेषनाग ५७

स

श्रीप्रभ २७
समुद्रगुप्त ७, १८, २५, २६, ३१, ३४, ४६, ५३, ६४
सम्मुखनन्दी २१
सर रिचार्ड बर्न १३
सरस्वती ६
सरस्वती कंठाभरण ११
सातवाहन १८, २०
सारनाथ २४, ३४
साँची ६८
सिकन्दर लोदी ६६
सिन्धु (सिन्ध) ४, १०, ११, २१, ३०, ३६, ५२, ६२
सिरसोद २
सिलेक्ट इंस्क्रिप्शंस २८
सिंहल १
सुरक्षाया ६

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सुहानिया ३
सूर्यस्तम्भशीर्ष ५५
सोवियत भूमि ४७
सौदामिनी ९
स्कन्द २१
स्कन्दनाग १९
स्कन्दिल ३७
स्मिथ ५९

ह

हयनाग १९, २० ५९
हरिहरनिवास त्रिवेदी १९, २५, २७, ५७, ६८
हरिहरनिवास द्विवेदी २४
हर्ष चरित ३२
हुविष्क १४
हूण १५

क्ष

क्षहरात १८

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६	३	वती	०
११	१२	लवण	लवणा
१४	टिप्पणी	पारिजट	पारीजटर
१७	३	ब्राह्मणहीन	ब्राह्मणरहित
२२	क्रम १३	या गणेन्द्र	या गणपेन्द्र
२३	६	पद्मवत्यां	पद्मावत्यां
२३	३२	भवन्नाग	भवनाग
३१	२६	अर्जुनापन	अर्जुनायन
४१	३२	लगान	लगाना
४३	२५	मो० बा० गर्दे	मो० बा० गर्दे
६१	१६	छितोरी	छिदोरी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

माणिभद्र यक्ष की मूर्ति (अग्र भाग), पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

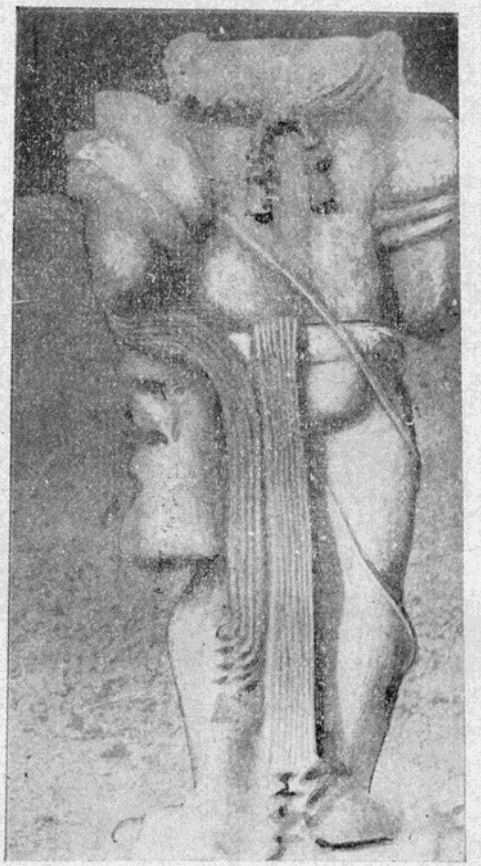

माणिभद्र यक्ष की मूर्ति (पृष्ठ भाग), पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

माणिभद्र यक्ष का शिलालेख, पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

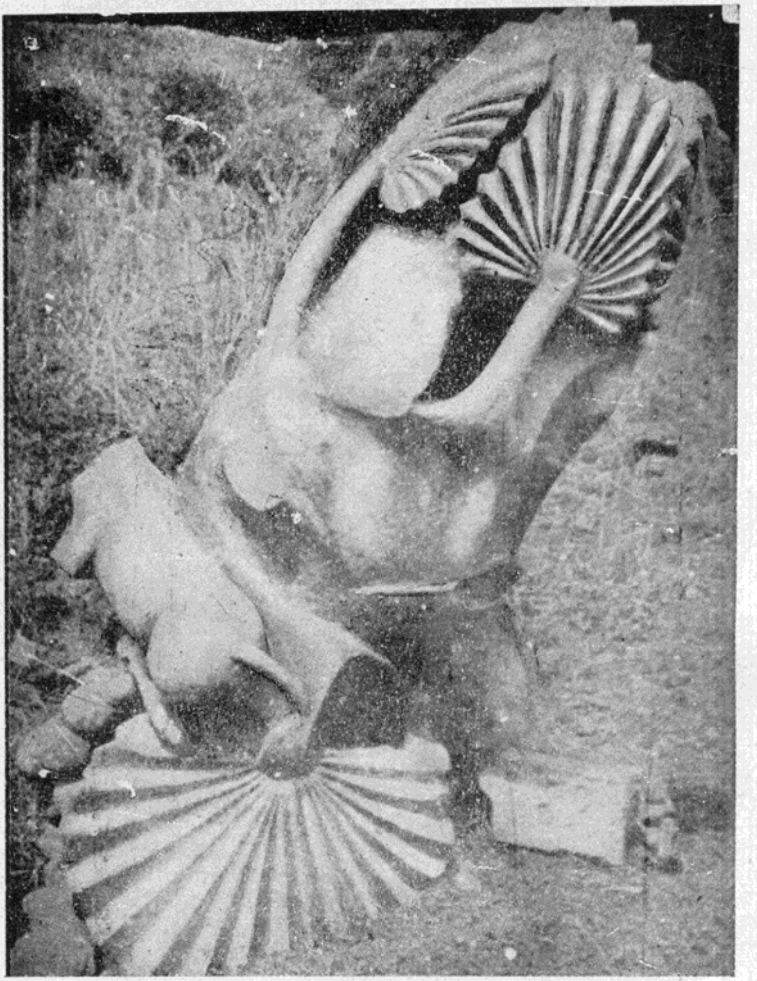

ताड़-स्तम्भ शीर्ष, पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

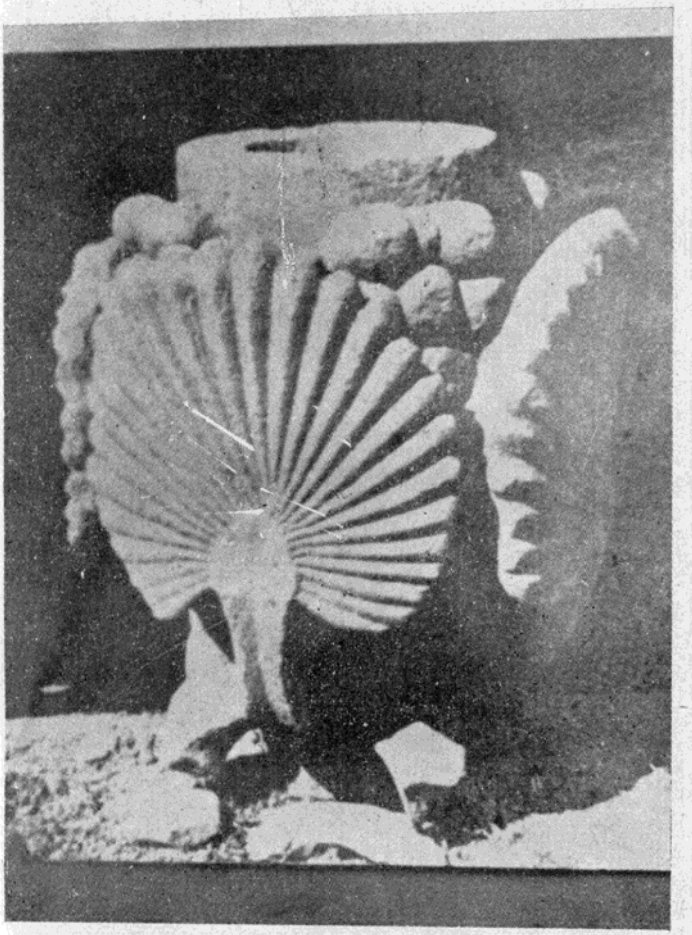

ताड़-स्तम्भ शीर्ष, पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विष्णु मन्दिर का सूर्य-स्तम्भ शीर्ष, पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

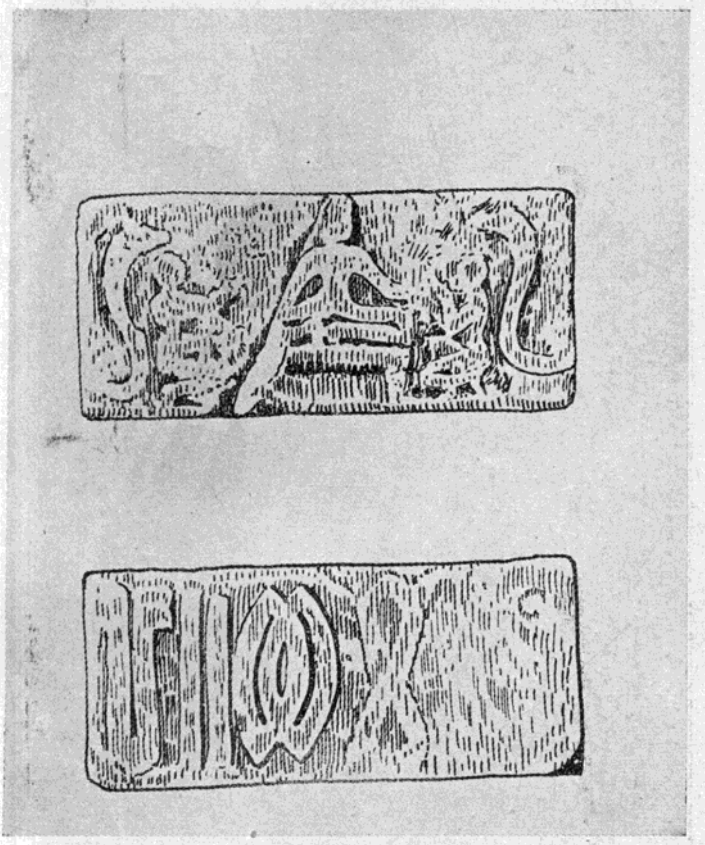

नागों की रुद्र-पूजा, मोहेंजोदरो

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विष्णु, पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विष्णु मूर्ति, पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नागराजा की प्रतिमा, फिरोजपुर (विदिशा)

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भार, शिवनाग, कला-भवन, काशी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

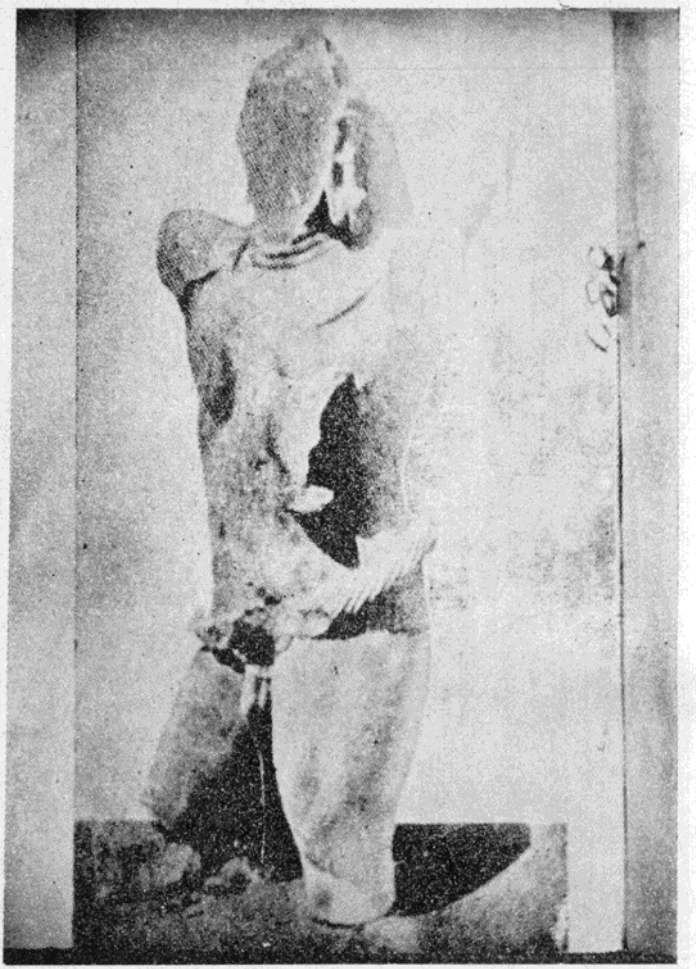

नागराजा की प्रतिमा, पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नागराजा की मूर्ति, पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

साँची के पास नाग राजा की मूर्ति [redacted] (अग्र भाग)

साँची के पास प्राप्त नाग राजा की मूर्ति (पीछे से) +

नागराजा की मूर्ति, (अग्र भाग) सांची

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नन्दी (अग्र भाग), पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नन्दी (पृष्ठ भाग), पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अधिराज श्री, भवनाग की मुद्राएँ

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ज्येष्ठ (मित्र या नाग ?) की मुद्राएँ

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्कन्दनाग की मुद्रा

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

माहेश्वर नाग की मुद्रा, लाहौर में प्राप्त

माहेश्वर नाग की मुद्रा, लाहौर

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

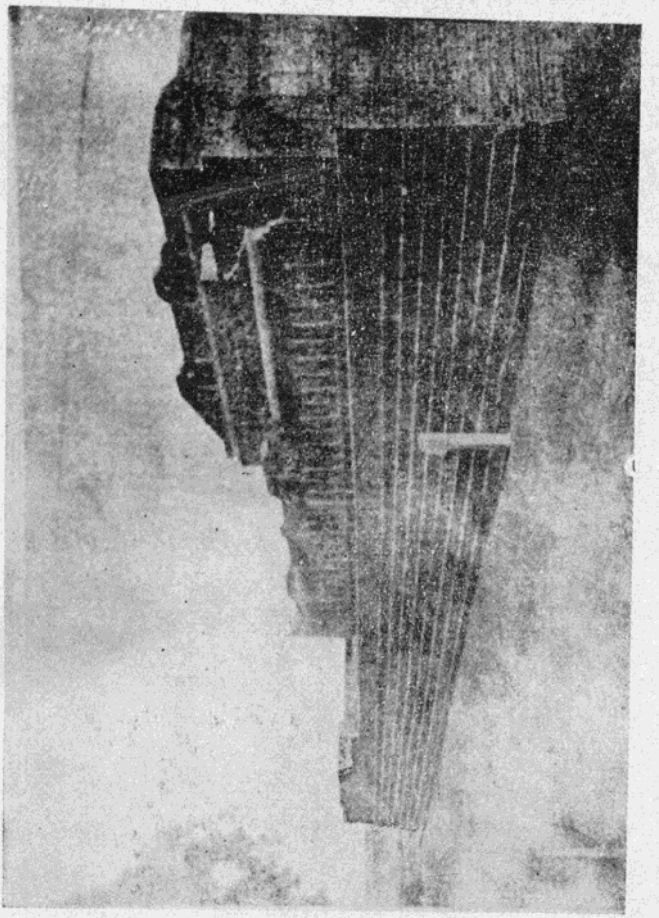

विष्णु मन्दिर, पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गीत-नृत्य-दृश्य, विष्णु मन्दिर, पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गीत-नृत्य की नर्तकी, पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

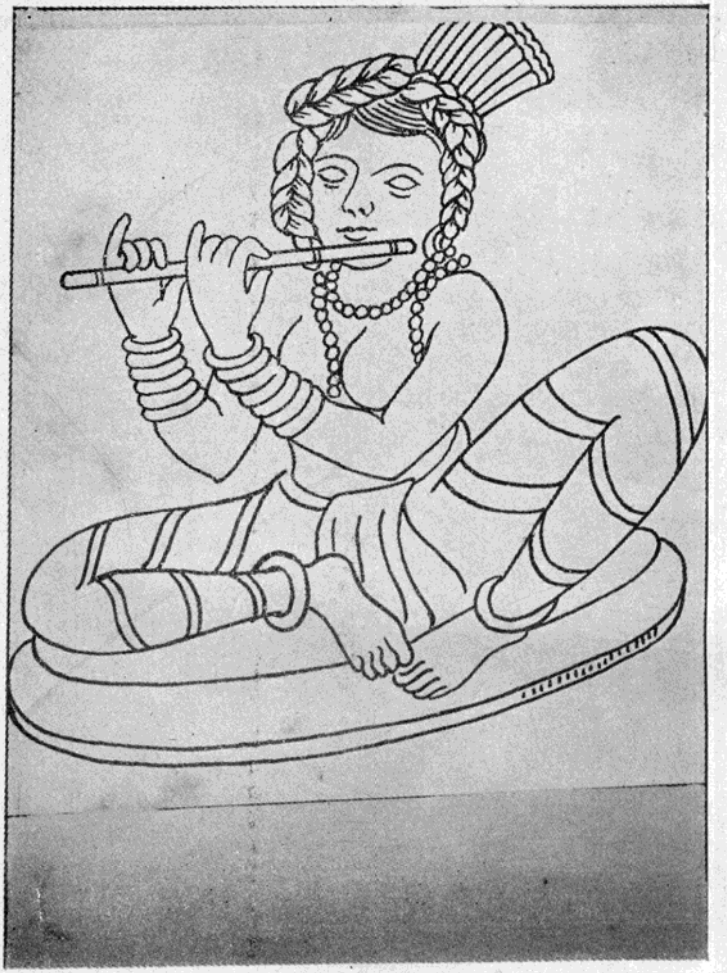

वाद्य तथा वादिका १, पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वाद्य तथा वादिका २, पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वाद्य तथा वादिका ३, पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वाद्य तथा वादिका ४, पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वाद्य तथा वादिका ५, पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

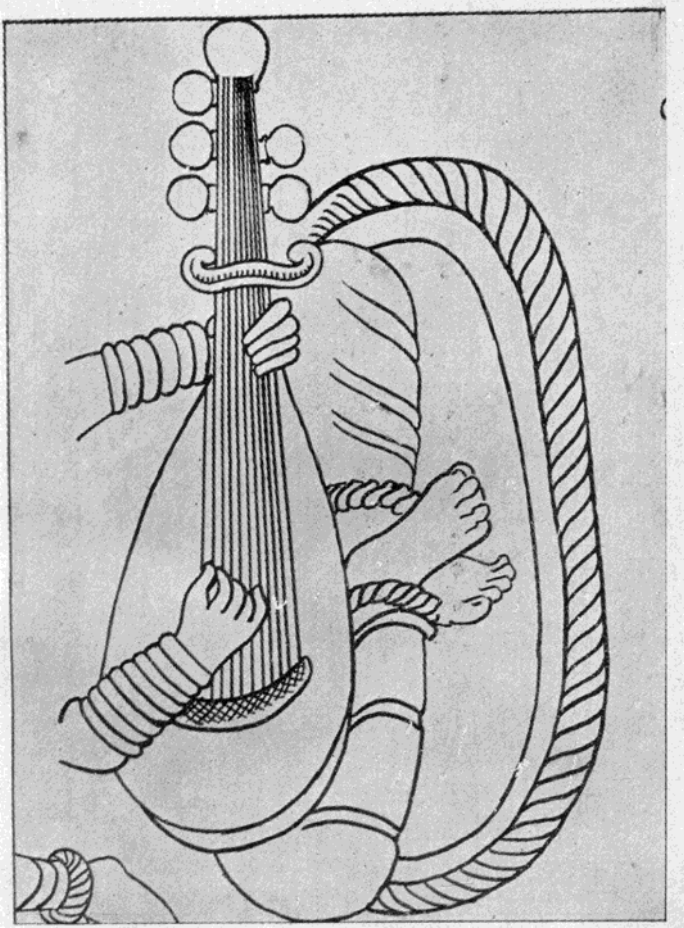

वाद्य तथा वादिका ६, पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

छत्रधारिणी, पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

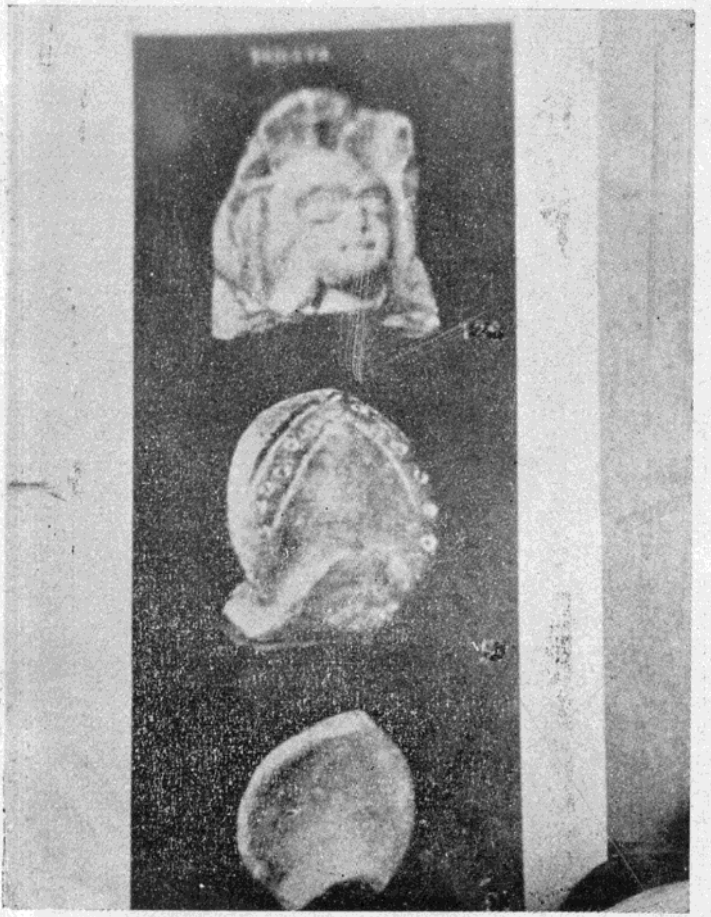

नागछत्र युक्त मुण्मूर्तियाँ, पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मृण्मूर्ति का सिर १, पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मृण्मूर्ति का सिर २, पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मृण्मूर्ति का सिर ३, पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मृण्मूर्ति का सिर ४, पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मृण्मूर्ति का सिर ५, पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मृण्मूर्ति का सिर ६, पद्मावती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

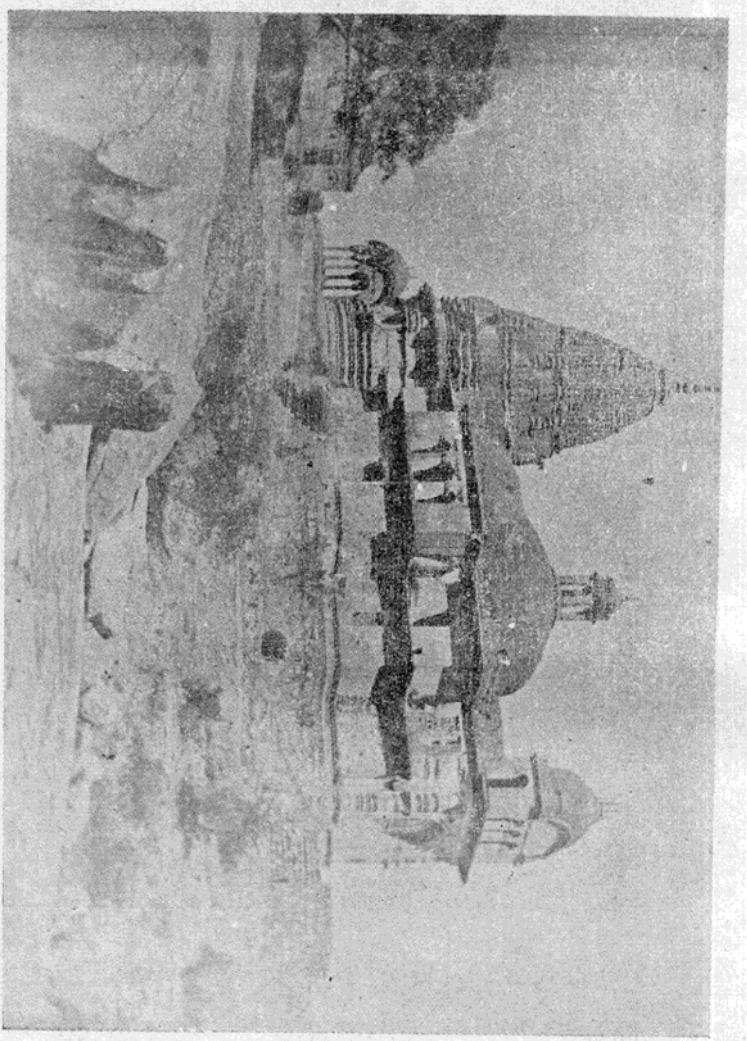

धूमेश्वर महादेव का मन्दिर, पवाया

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

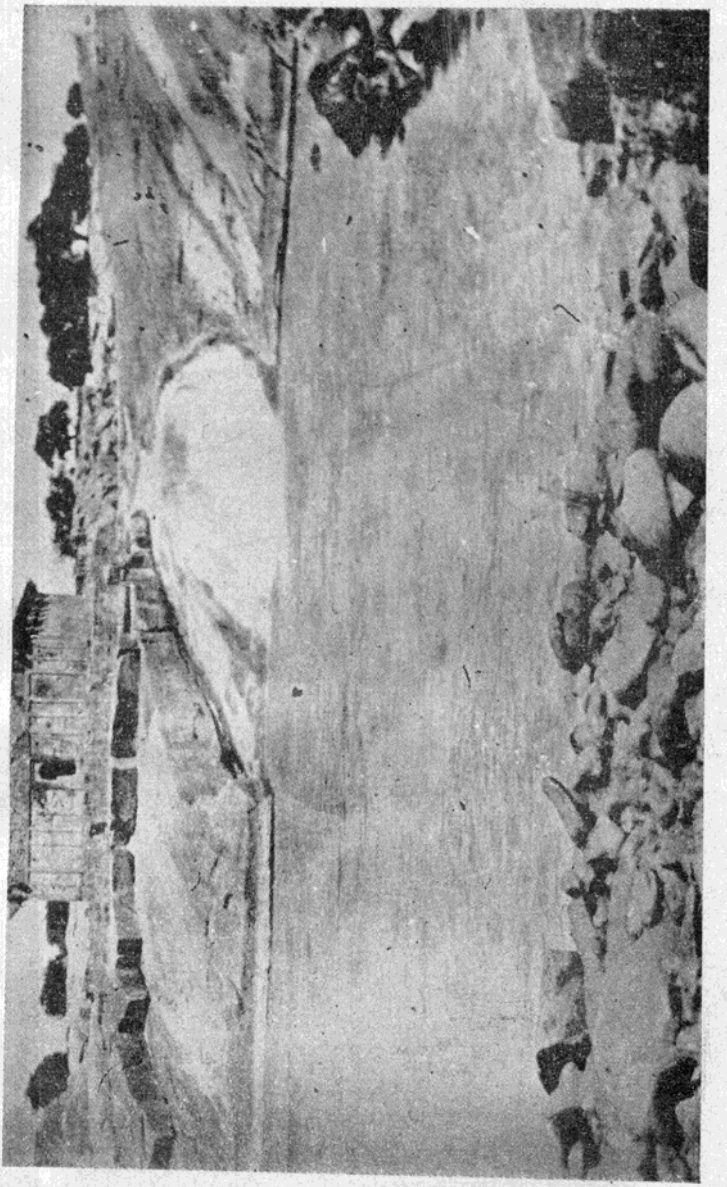

जलप्रपात, सिन्ध नदी, पवाया

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

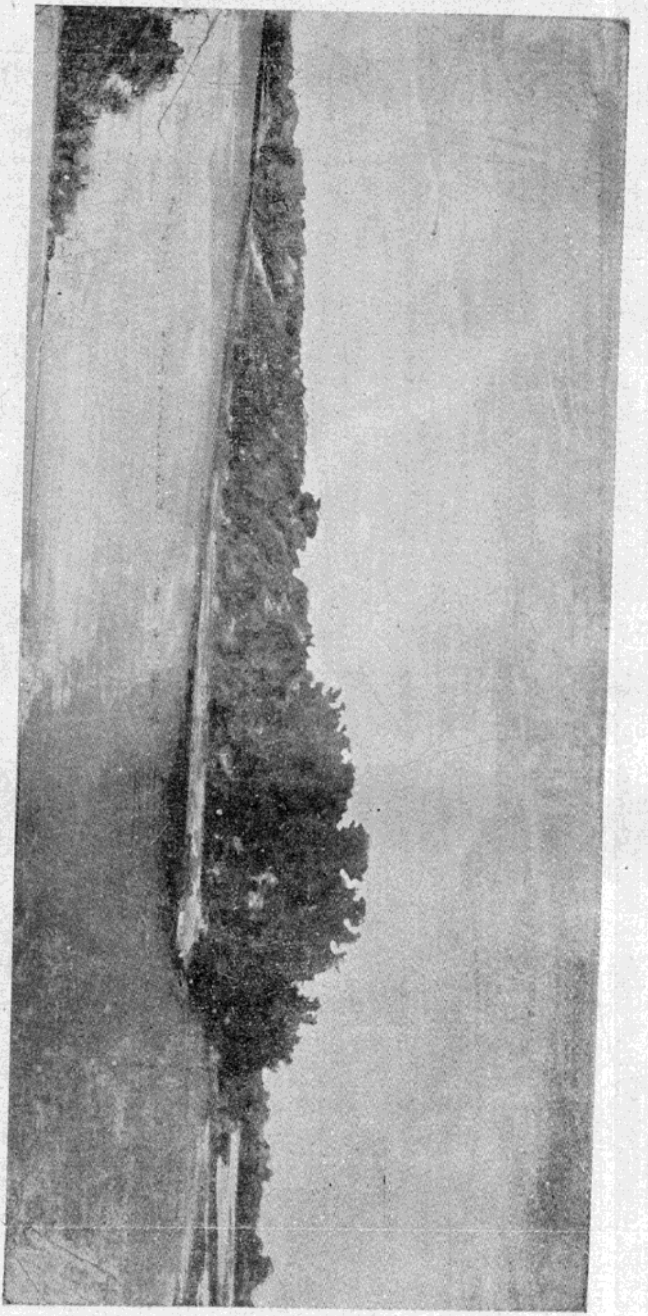

प्राकृतिक दृश्य, पवाया

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private and Personal Use Only